मंजरी

स्त्री के मन की

कुछ तो कहो अब चुप न रहो!

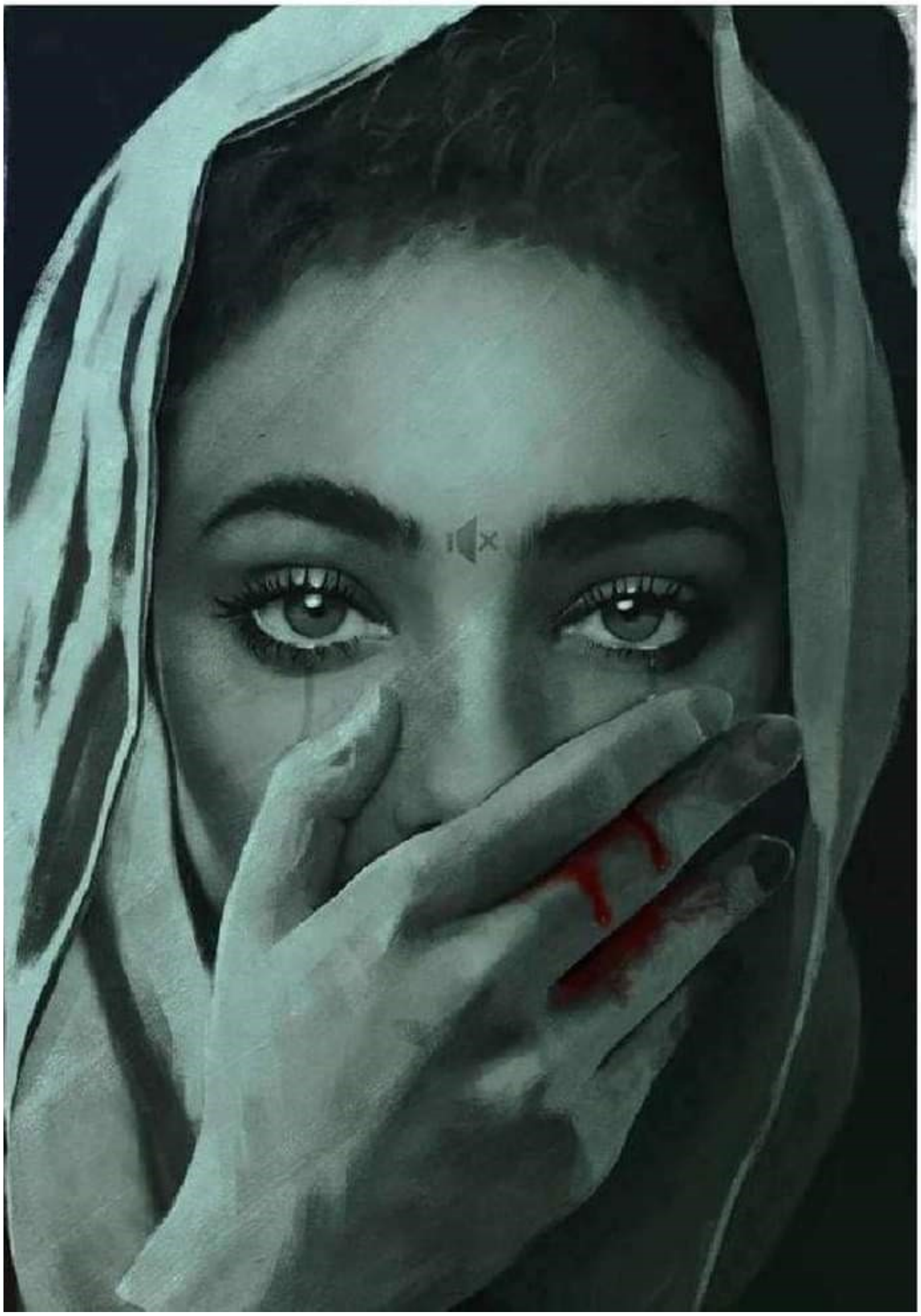

मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष

अंक– 17

वर्ष– 2020

Sulabh

Sanitation Movement

Sulabh International
Social Service Organisation

सुधा
मिल्क एवं मिल्क प्रोडक्टस
वादा शुद्धता का
लाखों परिवारों
के पोषण एवं
जीविकोपार्जन
का आधार
आत्म-विश्वास और
आत्म-सम्मान की
स्वस्थ पहचान
श्वेत कांति की मिसाल
एवं बिहार का गौरव
COMFED
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
ई-मेल: comfed.patna@gmail.com | टोल फ्री नं.: 18003456199 | www.sudha.coop

takshila
connect
to the
universe

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में परी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
नेशनल कोऑर्डिनेटर, कैरीटास स्विट्जरलैंड (CAR-ITAS Switzerland)

डा. शरद कुमारी
सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

आज दुनिया भर में पैंतालीस करोड़ से भी अधिक लोग मानसिक रोगों से ग्रस्त हैं। भारत में पांच करोड़ लोग मानसिक अस्वस्थता के शिकार हैं। मानसिक रोगियों की बढ़ती संख्या भारत ही नहीं वैश्विक स्तर पर भी चिंता का विषय है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, 2020 तक भारत में अवसाद दूसरा सबसे बड़ा रोग होगा और उस समय तक यह महिलाओं में सबसे आम बीमारी होगी। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं मानसिक रोगों की ज्यादा शिकार हैं। पुरुषों की अपेक्षा दोगुनी संख्या में महिलाएं मानसिक रोगों से ग्रस्त हैं। भावनात्मक आधार पर परिवार और समाज की रीढ़ महिलाएं आज मानसिक व्याधियों का शिकार बन रही हैं। गृहणी हों या कामकाजी, मानसिक तनाव और अवसाद उनके जीवन में जड़ें जमा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार हर पांच में से एक महिला और हर बारह में से एक पुरुष मानसिक व्याधि का शिकार है।

रिपोर्टों के अनुसार, 2014 में भारत में आत्महत्या से मरने वालों में 2,00,000 गृहणियां थीं। ये संख्या हमेशा चर्चा में रहने वाले किसानों के आत्महत्या के आंकड़ों से कहीं ज्यादा है। हालांकि इस तुलना का मकसद किसानों की मौत के मामलों को कमतर आंकना नहीं है। आंकड़ों की मानें, तो भारतीय महिलायें जब किसी मानसिक रोग से पीड़ित हो जाती हैं तो परिवार उन्हें सरकारी संस्थानों या फिर सार्वजनिक स्थानों पर ले जाकर छोड़ देते हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग की 2016 की रिपोर्ट के अनुसार, महिलाओं को ऐसे हालात होने पर परिवारजन त्याग देते हैं क्योंकि मानसिक रोग से जुड़ी सामाजिक तिरस्कार की भावना बहुत प्रबल है। भारत में दो–तिहाई महिलाएं घरों में होने वाली हिंसा की शिकार होती हैं और अक्सर ये भी लम्बे अरसे तक उनके मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता रहता है, लेकिन इन सब बातों को कभी तवज्जो ही नहीं दी जाती। ऐसे में अक्सर महिलाएं एक 'रिवर्स वेजिटेटिव' मानसिक स्थिति में चली जाती हैं, जिसमें उन्हें भोजन–सम्बन्धी विकार घेर लेते हैं। वजन बढ़ना या अपनी बॉडी इमेज से अत्यधिक जुनून की हद तक जुड़ जाना, मानसिक रूप से बेहद अस्थिर हो जाना आम बात है। वर्तमान का एक आकलन है कि अवसाद (डिप्रेशन) और इससे जुड़े अन्य विकारों से 41.9 प्रतिशत महिलायें ग्रस्त हैं, पुरुषों में ये आंकड़ा कम है। उम्रदराज जनसंख्या में भी डिप्रेशन और याददाश्त सम्बन्धी रोगों से जूझने वाले रोगियों में अधिकांश महिलाएं हैं।

प्योली स्वातिजा, जो सुप्रीम कोर्ट में एक वकील हैं, ऐसी ही एक पोस्ट में लिखती हैं, "भारत में यूं ही मानसिक स्वास्थ्य के बारे में जागरुकता न के बराबर है। जहां तक स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य की बात है, हालात कहीं ज्यादा खराब हैं। ज्यादातर स्त्रियां अपनी किसी भी तरह की बीमारी को छुपा कर रखने, कम कर के बताने के लिए कंडीशंड हैं, बताने पर भी परिवार वाले समुचित इलाज करवाएं इसकी सम्भावना कम रहती है।''

एबी नॉर्मन अपनी मशहूर किताब 'आस्क मी अबाउट माय यूटेरसः अ क्वेस्ट टू मेक डॉक्टर्स टू बिलीव इन वुमेन्स पेन' में लिखती हैं– ''एक महिला का उसके दर्द से सम्बन्ध उसकी यादों और सामाजिक समीकरणों में बुरी तरह उलझा होता है।''

अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में महिलाओं को अनेक चुनौतीपूर्ण मुकाम से भी गुजारना पड़ता है। किशोरावस्था, माहवारी की शुरुआत, असुरक्षित सेक्स संबंध, गर्भावस्था एवं प्रसूति, स्तनपान, संतान का पालन–पोषण और अक्सर घर के बड़े बुजुर्गों की देखभाल, इसके साथ–साथ अधिकतर महिलायें अब व्यावसायिक काम या नौकरी भी करती हैं। ये सब उनके मानसिक स्वास्थ्य पर तनाव के रूप में बुरा असर डालता दिखाई देता है। इन सब जिम्मेदारियों को समाज उन महिलाओं पर सिर्फ सुपर वुमन कह कर लाद देता है लेकिन उस भार का कुछ

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

प्रबंधन / व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

भी हिस्सा बांटता नहीं है।

मानसशास्त्र औषधि सम्बन्धी एक रिसर्च पत्र के अनुसार, "भारत में पुरुष को परिवार के लिए एक सम्पत्ति या उपयोगी सदस्य माना जाता है, मानसिक और शारीरिक रोग के साथ भी। ऐसे में अधिकतर पत्नियां, माता–पिता, संतान उनका सहयोग और देखभाल करते हैं, लेकिन महिलाओं के लिए परिस्थिति अलग है। विधवाओं को त्याग दिया जाता है, तलाकशुदा या पति से अलग हो चुकी महिला को दोष दिया जाता है, अकेली महिला से उसकी बीमारी के लिए लगातार सवाल किये जाते हैं और विवाहित महिला यदि मानसिक या शारीरिक रूप से अस्वस्थ हो जाये तो जिम्मेदारी अक्सर पति का परिवार और माता–पिता का परिवार एक दूसरे पर डालते रहते हैं।"

महिलाओं के सशक्तीकरण की तमाम योजनाओं और तमाम स्त्री–विमर्श के बरक्स स्त्रियों के स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दे हाशिये पर हैं। विशेषकर मानसिक स्वास्थ्य को लेकर तो न खुद महिलाएं सजग हैं और न ही समाज और परिवार में दिमागी अस्वस्थता के मायने समझने की कोशिश की जाती है। अनगिनत जिम्मेदारियों के दबाव और हमारी व्यवस्थागत असंवेदनशीलता के चलते स्त्रियों को हर कदम पर उलझनों का शिकार बनता पड़ता है। कभी अपराध–बोध तो कभी असुरक्षा का भाव उन्हें घेरे रहता है। ऐसे में वाकई आज के असुरक्षित और असंवेदनशील परिवेश में आधी आबादी का मानसिक स्वास्थ्य भी एक भी चिंता का विषय है। भारतीय संसद ने मेन्टल हेल्थ केयर एक्ट 2017 को पारित किया है, लेकिन दुर्भाग्य से इस बात की निगरानी के लिए कोई उचित एजेंसी या महिला निकाय नहीं है। महिलाओं के मानसिक स्थिति में सुधार लाने के लिए हमने इस विशेष अंक को प्रकाशित करना जरूरी समझा।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

(स्रोत– पूजा प्रियंवदा)

थीम पेपर

मानसिक स्वास्थ्य: संदर्भ और अंतर्संबंध

शुभ्रता प्रकाश

(भारतीय राजस्व सेवा की अधिकारी हैं और वर्तमान में नीति आयोग में निदेशक के तौर पर पदस्थापित हैं। वे कविता संग्रह 'इंक ऑन वाटर' तथा बेस्टसेलिंग पुस्तक 'द डी–वर्डः ए सरवाइवर्स गाइड टू डिप्रेशन' की लेखिका हैं)

पुरानी कहावत है, स्वास्थ्य ही धन है; लेकिन पारंपरिक रूप से, स्वास्थ्य की परिभाषा को मुख्य तौर पर केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक ही सीमित कर दिया गया, और समाज को मानसिक स्वास्थ्य को स्वीकारने तक से शर्म आने लगी। कभी–कभार यदि मानसिक स्वास्थ्य की बात की भी गई तो इसे समग्र स्वास्थ्य का एक हिस्सा मानने की बजाय केवल मानसिक बीमारी के रूप में ही देखा गया। ये ठीक–ठीक कहना मुश्किल है कि पहले क्या हुआ–मानसिक स्वास्थ्य को स्वीकारने की अनिच्छा के कारण इसे शर्मनाक माना गया, या, शर्म के कारण मानसिक स्वास्थ्य के बारे में ज्ञान का अभाव हुआ। सही तौर पर यही कह सकते हैं कि ये एक दुष्चक्र है–एक ऑरोबोरस–अपनी ही पूंछ को खाने वाला एक सांप। जानकारी की कमी और प्रचलित भ्रांतियों तथा गलत सूचनाओं के कारण शर्म की उत्पत्ति हुई और इस शर्म ने लोगों को मानसिक स्वास्थ्य के बारे में बात करने से रोका। इस तरह, अज्ञानता की खाई और गहरी होती गई और यह एक स्व–पोषित चक्र बनकर रह गया।

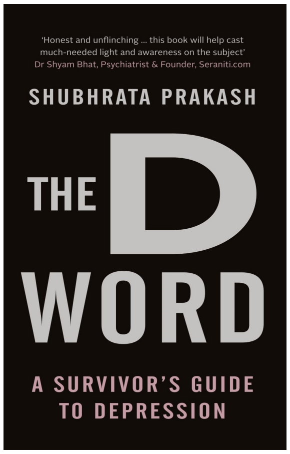

वास्तव में, मानसिक स्वास्थ्य और बीमारी स्पेक्ट्रम के दो छोर हैं। मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य की तरह ही हर किसी के पास होता है। मानसिक बीमारी या विकार किसी में भी उत्पन्न हो सकते हैं और एक तय समय में, हर कोई इस स्पेक्ट्रम के किसी न किसी जगह पर मौजूद होता है। तो, मानसिक विकार क्यों होता है? जवाब है, कोई नहीं जानता। अब तक। कुछ कारक हैं जिन्हें मानसिक विकार को पैदा करने या उसमें योगदान करने वाले तत्वों के तौर पर जाना जाता है। अध्ययनों में कुछ सामान्य मानसिक विकारों को उत्पन्न करने के लिए जीन की पहचान की गई है। जैविक कारण, जैसे कि हार्मोनल बदलाव, विटामिन की कमी, लंबे समय तक शारीरिक रूप से बीमार रहना जैसे कारण भी हैं। अध्ययनों में मानसिक विकारों को न्यूरोलॉजी से भी जोड़ा गया है और इसके लिए पीईटी तथा एफएमआरआई स्कैन की तकनीकों का इस्तेमाल कर मस्तिष्क की संरचना, रासायनिक और विद्युतीय गतिविधियों का पता लगाया गया है। कई प्रकार के विकारों के लिए तनाव और तनाव से जुड़े हार्मोन को भी उद्दीपक माना गया है।

तो, आखिर क्यों कोई व्यक्ति मानसिक विकार का शिकार हो जाता है और कोई नहीं? हर मस्तिष्क अलग है, हर जीवन अलग है। किन्हीं दो व्यक्तियों की तुलना कर ये नहीं कहा जा सकता है कि वे बिलकुल एक जैसे हैं। मानसिक स्वास्थ्य पर यह आलेख कारकों के अंतर्संबंध पर ध्यान केन्द्रित करती है, यह मानते हुए कि मानसिक विकार जैविकीय, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारकों के परस्पर संबंध से पैदा होते हैं। आंकड़ों से पता चलता है कि महिलाएं अवसाद जैसे मानसिक विकारों से अपेक्षाकृत अधिक ग्रस्त होती हैं। 15 से 39 साल की भारतीय

ये ठीक–ठीक कहना मुश्किल है कि पहले क्या हुआ–मानसिक स्वास्थ्य को स्वीकारने की अनिच्छा के कारण इसे शर्मनाक माना गया, या, शर्म के कारण मानसिक स्वास्थ्य के बारे में ज्ञान का अभाव हुआ। सही तौर पर यही कह सकते हैं कि ये एक दुश्चक है–एक ऑरोबोरस–अपनी ही पूंछ को खाने वाला एक सांप। जानकारी की कमी और प्रचलित भ्रांतियों तथा गलत सूचनाओं के कारण शर्म की उत्पत्ति हुई और इस शर्म ने लोगों को मानसिक स्वास्थ्य के बारे में बात करने से रोका। इस तरह, अज्ञानता की खाई और गहरी होती गई और यह एक स्व–पोषित चक बनकर रह गया।

महिलाओं में मौत का सबसे बड़ा कारण आत्महत्या को माना गया है। महिलाओं के शरीर को प्रथम माहवारी से लेकर रजोनिवृत्ति तक कई प्रकार के हार्मोनल बदलावों से गुजरना पड़ता है, जिसमें माहवारी के कारण तो हर महीने उनमें बदलाव आते हैं, जबकि गर्भावस्था और बच्चे के जन्म के दौरान आमूलचूल परिवर्तन होते हैं। प्रीमेन्सट्रुअल डायस्फोरिक डिसऑर्डर (पीएमडीडी) तथा पोस्ट–पार्टम डिप्रेशन (पीपीडी) वे सबसे सामान्य अवसाद विकार हैं जो महिलाओं को प्रभावित करते हैं। सामाजिक ढांचों ने बहुधा महिलाओं को पितृवादी सोच के दायरे में कैद करके रखा है और उनके खिलाफ हिंसा को बढ़ावा दिया है। इसके परिणामस्वरूप सामान्य तौर पर महिलाओं के स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ा और विशिष्ट रूप से उनके मानसिक स्वास्थ्य को आघात पहुंचा। पोषण और शिक्षा के निम्न स्तर ने महिलाओं में अभाव को कई गुना तक बढ़ा दिया है जबकि ज्यादातर उन्हें सही देखभाल भी नहीं मिल पाती है। परिवार, समाज और यहां तक कि कार्यस्थल पर भी, उत्पीड़क माहौल उनमें तनाव के स्तर को बढ़ा देता है जो महिलाओं में मानसिक विकार को बढ़ावा देने के लिए बहुत हद तक जिम्मेदार होता है, यहां तक कि, महिलाएं अपनी जान तक दे देती हैं। इसके अलावा, औरतों को अक्सर अस्थिर प्रकृति को माना जाता है और उनके मूड को देखते हुए, मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी उनकी समस्याओं को गंभीरता से नहीं लिया जाता है। देखभाल से जुड़ी सुविधाओं में कमी और सबके मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा में बाधा के कारण महिलाओं को पूरा ध्यान नहीं मिल पाता है। यहां तक कि अगर किसी महिला को डाक्टरी जांच में मानसिक रोग का पता चल भी जाता है, तो भी उसे 'ड्रामा क्वीन' करार देकर उसकी बीमारी को नजरअंदाज कर दिया जाता है। ऐसे में उसके लिए अपनी बीमारी का इलाज कराने के लिए सहयोग ले पाना बहुत मुश्किल हो जाता है। चूंकि मानसिक विकार मनोवैज्ञानिक–सामाजिक अक्षमता लाते हैं जो ज्यादातर सामने से दिखाई नहीं देते हैं, इसलिए एक महिला के लिए अपने करीब के लोगों को अपने दर्द को दिखा पाना बहुत कठिन होता है और वो उन्हें समझा नहीं पाती है कि उसकी पीड़ा वास्तविक है। खाना पकाना, साफ–सफाई करना और बच्चों का पालन–पोषण करना आम तौर पर हर घर में महिलाओं का सबसे प्रमुख दायित्व होता है, और सामाजिक–मनोवैज्ञानिक दुर्बलता के बाद भी उन्हें अपने इन दायित्वों से छुटकारा नहीं मिलता है। जाहिर है, सीधे–सीधे उनके अस्तित्व को नकारा नहीं भी जाए, तो भी उनके ठीक होने की संभावनाएं अति सीमित कर दी जाती हैं।

लैंगिक असमानता और मानसिक रोग से जुड़ी शर्म के बीच अंतर्संबंध महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य के लिए विपदाकारी है। इसका समाधान दोनों ही मुद्दों पर ज्यादा से ज्यादा जागरूकता और कार्रवाई से संभव है। चूंकि लैंगिक समानता मानसिक रोग से जुड़ी शर्म की अपेक्षा महिलाओं के जीवन को कहीं ज्यादा प्रभावित करती है, इसलिए ये भी सच है कि लैंगिक समानता महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा का एक तरीका हो सकती है जो उन्हें स्पेक्ट्रम के रोग वाले साइड में जाने से बचा सकती है। वैसे युवा जो जेंडर और कामुकता के सामाजिक मानदंडों से अलग हैं, मानसिक विकारों के आसान शिकार बन जाते हैं और इसी तरह लैंगिक समानता का महत्व ट्रांसजेंडर समुदायों के लिए भी कहीं अधिक हो जाता है।

हमें मानसिक स्वास्थ्य को लेकर होने वाली बातचीत को भी सामान्य बनाने की जरूरत है। मानसिक रोग या विकार पागलपन नहीं होते हैं। हमें ऐसा माहौल बनाने की जरूरत है जहां लोग–मर्द, औरत और बच्चे–मानसिक स्वास्थ्य को लेकर सुरक्षित और बिना निर्णय वाली बातचीत में शामिल हो सकें। मानसिक रोगियों को बंद रखना या उन्हें चेन में बांध कर रखना बर्बरता है और उनके मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन है, तथा यह मेंटल हेल्थकेयर एक्ट (एमएचसीए) 2017 के तहत दंडनीय भी है। गरीब और बेघर हो जाना मानसिक स्वास्थ्य के अन्य दुष्परिणाम हैं और हमें एक समाज के तौर पर मानसिक रोगियों की जिम्मेदारी को सामूहिक तौर पर उठाना चाहिए।

अंततः हमें इस बात को समझने की जरूरत है कि मानसिक स्वास्थ्य के बिना स्वास्थ्य का कोई अस्तित्व नहीं है। चलिए, हम मिलकर, एक समाज के रूप में, मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं के समाधान की खोज करें और उसे मुख्यधारा में लाएं। जिस तरह से महामारी ने लोगों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित किया है, मानसिक स्वास्थ्य को स्वास्थ्य की पारिस्थितिकी में उचित स्थान देना लंबे वक्त में मानव जाति के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है।

अनुक्रमणिका

संकल्पना

हमारी बात : संपादकीय

थीम पेपर: मानसिक स्वास्थ्यः संदर्भ और अंतर्संबंध 1
– शुभ्रता प्रकाश

विशेषज्ञ: परिवार की धुरी होती हैं महिलाएं 4

समर्पित: मीतो 8
– कमला भसीन

हर स्त्री खास: महिलाएं और मानसिक स्वास्थ्यः एक अवलोकन 9
–सविता मल्होत्रा व रुचिता साह

लॉकडाउन: तेरा दर्द न जाने कोये 12
–दीपिका झा

विजेता: सितारे– जिन्होंने अवसाद को दी मात 14

मुश्किलें: वो दिन जो डराते हैं औरतों को 16

चिंतनीय: देश में हर पांच मिनट में होती है एक आत्महत्या 17
–भारती गौड़

परामर्श: भटकने न दें, हाथ थाम लें बचपन का 20
–डॉ. बिन्दा सिंह

आपबीती : ''हां, मैंने अवसाद को हराया है'' 22
–शुभ्रता प्रकाश

विचार: खुदकुशी से पहले बन जाएं दोस्त 25
– अनिरुद्ध काला

मनोदशा: महिलाएं और अवसाद 27
– डा. प्रमोद कुमार सिंह

युवा: बच्चे और युवा भी मनोरोग की चपेट में 29
– सचिन कुमार जैन

केस स्टडी: छोटी उम्र के नाजुक रिश्ते 31

वृद्धजन: बुजुर्ग–मानसिक स्वास्थ्य और कानूनी अधिकार 32
–डॉ. नाज परवीन

हमलोग: हत्या की तरह होती है हर एक खुदकुशी 34
– झुनझुन राय
पहले असफल होना सीखिये 35
– प्रीति 'अज्ञात'

श्रोत

www.google.com
www.hindustantimes.com
www.timesofindia.com
www.whiteswanfoundation.org
thelivelovelaughfoundation.org

Images from

www.google.com
https://in.pinterest.com

विशेषज्ञ

परिवार की धुरी होती हैं महिलाएं

साक्षात्कार : महिलाएं और मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में उनकी जटिलताएं

महिलाओं में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों का कारण अनेक प्रकार के कारक होते हैं। इस साक्षात्कार में, व्हाइट स्वान फाउन्डेशन के चेयरमैन, **सुब्रोतो बागची** की बातचीत **डॉ प्रभा एस चन्द्रा** से होगी जो कि महिलाओं में अवसाद और उसके सामाजिक कारकों पर आधारित है। वीडियो साक्षात्कार के कुछ संपादित अंश को लिखित रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

सुब्रोतो बागचीः न्यू डायमेन्शन में आपका स्वागत है। मैं हूं सुब्रोतो बागची और मेरे साथ स्टूडियो में आज हैं डॉ प्रभा चन्द्रा., आपका स्वागत है। डॉ प्रभा चन्द्रा नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेन्टल हेल्थ एन्ड न्यूरो सायन्सेस में विभागाध्यक्ष हैं। आप इन्टरनेशनल एसोसिएशन फॉर वूमन्स मेन्टल हेल्थ की सचिव भी हैं। न्यू डायमेन्शन में हमारे मेहमान के रूप में आने के लिये बहुत बहुत शुक्रिया।

व्हाइट स्वान फाउन्डेशन के चेयरमैन, **सुब्रोतो बागची** की मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ **डॉ प्रभा एस. चन्द्रा** से बातचीत

डॉ प्रभा चन्द्राः मुझे खुशी हुई

सुब्रोतो बागचीः आज हमारे लिये बड़ी खुशी की बात है कि आप हमारे साथ हैं और हम ''महिलाएं और मानसिक स्वास्थ्य'' विषय पर बात कर रहे हैं। परंतु मुझे बताइये कि आपका दिन कैसा बीता?

प्रभा चन्द्राः दिन तो काफी व्यस्त रहा। यह मेरा आउटपेशन्ट दिवस था और आज मैने अनेक महिलाओं को विविध प्रकार की समस्याओं के साथ देखा। कुछ युवा महिलाएं थीं जिनमें बौद्धिक समस्याएं थी, जिन्हें लेकर उनके घर के सद्स्य चाहते थे कि वे विवाह करे। एक सॉफ्टवेयर इन्जीनियर थी जिसे यौन समस्याएं थी और शारीरिक स्वास्थ्य समस्याएं थी जिनकी मुख्य जड मानसिक समस्याओं के रूप में ही थी। और कुछ महिलाएं थी जो गर्भ धारण करना चाहती थी लेकिन वे लंबे समय से अवसाद में है। उसने और उसके पति ने मुझसे बात की। तो अब तक तो यही था आज के लिये।

सुब्रोतो बागचीः और चौथी महिला को क्या हुआ?

प्रभा चन्द्राः चौथी महिला को वास्तव में भोजन संबंधी समस्या थी।

सुब्रोतो बागचीः अच्छा, इनकी आयु क्या थी, उदाहरण के लिये, ये चारों महिलाएं किस (आयु) में थीं?

प्रभा चन्द्राः ये सभी महिलाएं 35 के अन्दर की आयु की थी। वाकई कम उम्र की थीं।

सुब्रोतो बागचीः क्या यह तथ्य केवल शहरों में ही लागू होता या आपके अनुसार यह ग्रामीण क्षेत्र में भी प्रसारित है?

प्रभा चन्द्राः नहीं, ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिये एक महिला जिसे बौद्धिक विकलांगता थी, वह देवनगरे नामक ग्राम से आई थी। और

अन्य एक महिला नेल्लोर से आई थी, तो यह केवल शहरी मामला नहीं है। यह भारत के प्रत्येक कोने में है।

सुब्रोतो बागचीः तो यह मुद्दा शहर–गांव का मुद्दा नहीं है, न ही यह अमीर–गरीब का मुद्दा है।

प्रभा चन्द्राः नहीं, बिल्कुल नहीं।

सुब्रोतो बागचीः मुझे इस बारे में आपके विचार जानने की उत्सुकता है। हमारा देश 1.2 बिलियन लोगों से बना है और हमें यह बताया जाता

है कि यहां पर 4,000 मानसशास्त्री हैं और लगभग 10,000 व्यक्ति प्रशिक्षित चिकित्सकीय व्यवसाय से जुडे हैं। यह वाकई समुद्र में एक बूंद की भांति है। और इसमें भी 1.2 बिलियन लोगों में से 50 प्रतिशत महिलाएं है। लेकिन मुझे यह बताया गया है कि 50 प्रतिशत की यह संख्या केवल समस्या का 50 प्रतिशत नहीं है। और कुछ लोगों का कहना है कि महिलाओं की मानसिक समस्याएं एक बड़ा मुद्दा है, केवल व्यक्तिगत समस्याओं से संबंधित ही नहीं, कई बार मौन स्वरूप में लेकिन देखभाल करने वालों के लिये। इसके साथ ही, परिवार की धुरी होने के नाते, इसका प्रभाव काफी बड़ा होता है। तो हमें बताइये कि आप महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को लेकर क्या विचार रखती हैं– क्या हम मानसिक स्वास्थ्य को लेकर सही ध्यान दे पा रहे हैं?

प्रभा चन्द्राः मुझे लगता है कि यह बहुत अच्छा बिन्दु है और मैंने इसके बारे में हमेशा से ही सोचा है। महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को हमेशा पुरुषों के मानसिक स्वास्थ्य के स्थान पर ज्यादा महत्व क्यों दिया जाता है? महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित संस्थान हैं, पुस्तकें भी हैं। उदाहाण के लिये इन्डियन सायकेट्रिक सोसायटी के पास महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य संबंधी एक टास्कफोर्स है, लेकिन पुरुषों के लिये यह नही है। इसलिये, वास्तविकता में ही कोई मुद्दा तो है यहां पर।

जेंडर आधारित मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएं भी अनेक प्रकार से बदल सकती है। इसलिये मुझे पक्का यकीन है कि पुरुषों को भी मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएं होती हैं और उनकी समस्याएं अलग होती हैं। लेकिन मुझे लगता है कि महिलाओं की मानसिक समस्याएं इतना महत्वपूर्ण मुद्दा बन जाता है कि अवसाद की स्थिति में या अन्य किसी भी मानसिक स्वास्थ्य संबंधी स्थिति में, महिलाएं पुरुषों से अधिक दिखाई देती हैं।

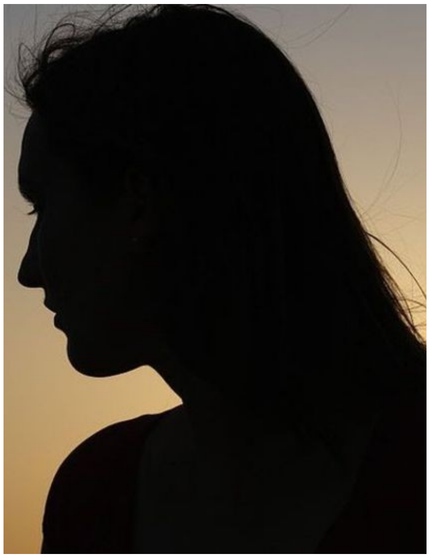

सुब्रोतो बागचीः तो आप मुझे यह बताना चाहती हैं कि महिलाओं को कुछ प्रकार की श्रेणियों के साथ जैविक आधार पर या सामाजिक आधार पर, या दोनो प्रकार से समस्याएं होने की आशंका है?

प्रभा चन्द्राः यह सही है। और मैं इसे वास्तव में एक त्रिकोण के रुप में दिखाना ज्यादा पसंद करती हूं। आपके पास एक तो है सामाजिक, एक है सांस्कृतिक और तीसरा है मानसिक। इसलिये महिलाएं पुरुषों से अलग बनी हुई होती हैं, मानसिक तौर पर। और यह केवल जैविक या सामाजिक जेंडर निर्माण में ही मौजूद नहीं है। अनेक अन्य तरीके हैं जिसमें महिलाओं को अपनी समस्याओं का सामना करना होता है– जिस तरह से वे बातें करती हैं, अपनी समस्याओं को सुलझाती हैं, वे एकदम अलग तरीके की महिला हैं। इसलिये मुझे लगता है कि महिला अपनी जटिलताओं के बीच पूरी शक्ति के साथ जो योगदान देती है उसके लिये उसे इस त्रिकोण का सम्मान मिलना चाहिये।

सुब्रोतो बागचीः हम महिला शब्द का उपयोग करते है, लेकिन हम एक पूरे जीवनकाल के बारे में बात करते हैं, इस संसार में आने वाली नवजात बालिका से लेकर किशोरावस्था, यौवनारंभ, किशोरावस्था, युवा और एक महिला। साथ ही आगे की स्थितियां भी आती है। तब क्या स्वास्थ्य संबंधी मुद्दे, महिला के युवावस्था में अधिक होते हैं?

प्रभा चन्द्राः बिल्कुल सही है। मेरी सोच है कि यही एक कारण है जिसके चलते महिलाओं की मानसिक समस्याएं अलग होती है। जीवन के विविध स्तर हैं जिसमें उनके प्रजनन के चक्र को लेकर महिला के मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण को तय किया जा सकता है। प्रत्येक भौतिक स्वास्थ्य में जीवन के चक्र दिखाई देते है। उदाहरण के लिये, यौवनारंभ का समय युवा लड़कियों के लिये बदलाव का प्रमुख मोड़ है। और इससे पहले, महिलाओं को समान समस्याओं से दो–चार होना पड़ता है खासकर अवसाद और व्यग्रता। साथ ही यौवनारंभ के कारण लड़कियों में अचानक अवसाद होने की समस्या लड़कों की तुलना में बहुत ज्यादा है।

सुब्रोतो बागचीः चलिये महिलाओं के बारे में, स्त्रीत्व के बारे में बात करते हैं जो उस समय से शुरु होता है जब किसी भी लडकी का यौवनारंभ होता है और वह बड़ी होती है, उसके प्रजनन चक्र के विकास के साथ। विविध चक्रों से आगे जाते हुए, क्या आप विविध मानसिक मुद्दों को देख पाते हैं जो एक महिला के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित हैं?

प्रभा चन्द्राः मुझे लगता है कि यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। इसलिये हम शुरू करते हैं जन्म से लेकर यौवनारंभ तक। मुझे लगता है कि यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसे अधिक महत्व नही दिया जाता है। अनेक परिवारों में, लड़की पैदा होने पर कोई समारोह नहीं किया जाता, खासकर कुछ स्थितियों में। इसके साथ ही लड़की को, लड़के के समान सम्मान और तरजीह नहीं दी जाती है और उसे बहुत अलग तरह से व्यवहार दिया जाता है। इसलिये मुझे लगता है कि अधिकांश लड़कियां, बचपन से ही इस विचार के साथ बड़ी होती हैं कि वे परिवार की दोयम दर्जे की नागरिक हैं। और उन्हें जो भूमिकाएं दी जाती हैं, वे भी बहुत शक्तिशाली नहीं होती हैं, उन्हे शांत रहने, देखने लेकिन न बोलने की शिक्षा दी जाती है जो अनेक परिवारों के लिये सही है। मेरी सोच है कि यह ऐसा क्षेत्र है जहां पर जटिलता है, जब भी वह किसी परिवार में प्रवेश करती है, उसे स्वयं भी अपनी भूमिका के बारे में पता नही रहता है।

सुब्रोतो बागचीः तो उसके लिये जो स्थितियां तैयार की जाती हैं, उसमें उसे स्वयं की स्थिति के बारे में जानकारी नहीं होती और इसमें उसके मानसिक स्वास्थ्य संबंधी मुद्दे सामने आते हैं।

प्रभा चन्द्राः यह सही है। इस स्थिति के कारण जटिलता पैदा होती है– सम्मान नहीं मिलना और परिवार में कोई स्थान मुश्किल से मिल पाना। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि उनका शोषण, यौन शोषण युवा लड़कियों में, लडकों के स्थान पर अधिक होते हैं। इसके साथ ही यदि यह होता है, तब इसमें समस्या यह होती है कि यदि उसके द्वारा यह बात बताई जाती है, तब उसे आवश्यक सुरक्षा नहीं दी जाती, अथवा वह किसी को बताती है, तब कोई उसपर विश्वास नही करता, यहां पर समस्या होती है और जटिलता बढ़ती जाती है। और यदि इस

स्थिति में परिवार में बिखराव होता है, यह उनका अपना मुद्दा होता है। माता–पिता यहां पर बच्चों के साथ खड़े नहीं रहते हैं और यहां पर एक और जटिलता सामने आती है और यह लड़के और लड़कियों के लिये समान हो सकती है। लेकिन लड़कियों की स्थिति में, जटिलताएं ज्यादा होती है। इसके बाद यौवनारंभ होता है। अब यौवनारंभ लड़कियों के लिये बेहतर स्थिति है, सब कुछ अच्छा होने वाला है, वह सही दिशा में बढ़ रही है। परंतु हारमोन की स्थिति के अनुसार और मस्तिष्क में कुछ समस्याएं बनना शुरू हो जाती हैं और इसके कारण अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जैसे अवसाद का होना युवा लड़कियों में लड़कों की तुलना में चार गुना अधिक होता है। इसलिये इसपर चर्चा की जानी चाहिये।

सुब्रोतो बागची: अच्छा, तब इनमें से कौन सी स्थिति होती है जो अनिवार्य रूप से यात्रा का हिस्सा है और उसपर ध्यान देना आवश्यक है?

प्रभा चन्द्रा: यह कहना कठिन है...

सुब्रोतो बागची: लेकिन एक डॉक्टर होने के नाते, आपको ये महसूस करना होता होगा, इसमें 50 प्रतिशत स्थितियों में अवसाद बहुत ज्यादा बढ़ चुके होते हैं...?

प्रभा चन्द्रा: नहीं, यह इस तरह से नहीं है। यह केवल यौवनारंभ नही है जिससे लड़कियां अवसाद में आती है और आगे यह सिलसिला चलता रहता है। लेकिन जैसा कि कहा गया है, उम्र 13–14 साल की हो या 80 वर्ष की, महिलाओं में अवसाद की दर चार गुना ज्यादा होती है। इसलिये इसमें यौवनारंभ भी अपना असर दिखाता है। इसलिये यह हारमोन का असर होता है जो शरीर में पहले से ही जटिल स्थितियों को और भी उलझाने का प्रयत्न करता है।

सुब्रोतो बागची: तो वैसे आपका कहना है कि सब कुछ बराबर रहता है, किसी लड़की या महिला को अवसाद या व्यग्रता होने का खतरा ज्यादा होता है।

प्रभा चन्द्रा: और उसके बाद, आपका प्रश्न जो कि प्रजनन जीवन के संदर्भ में है। तो इसलिये आप जानते हैं कि अनेक महिलाएं इस प्रकार के वातावरण में बडी होती हैं। उन्होंने पढ़ाई की होती है और फिर उनका विवाह हो जाता है। और शहरी, पढ़ी–लिखी महिलाओं में से भी इन्हें खींचकर इसे वातावरण में डाल दिया जाता है, जहां पर सब कुछ अनजाना है।

सुब्रोतो बागची: तब उन्हें ये सब कुछ फिर से शुरू करना होता है।

प्रभा चन्द्रा: उन्हें सब कुछ फिर से शुरू करना होता है। इसलिये वे सारे संबंध जो उन्होंने बनाए होते हैं, वे सब टूट जाते हैं और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह दैनिक जीवन में एकाध सप्ताह के समय में नवीन वातावरण के साथ सामंजस्य बैठा ले।

सुब्रोतो बागची: आपको जीवन में बार–बार अजनबी बनने के लिये दबाव डाला जाता है।

प्रभा चन्द्रा: ये बिल्कुल सही है और इसके कारण जीवन में फिर से अजीब सी जटिलता आ जाती है। इसलिये अनेक लड़कियां यही सोचती हैं कि यही उनकी नियति है, उनकी संस्कृति में यही स्वीकार्य है, आपको पता है कि आपको यह करना है, कैसे भी इसे करना ही है। लेकिन आप किसी ऐसी स्त्री में से एक है जिसके जीवन में पहले से ही कोई समस्या है, तब उसे इस स्थिति में स्वयं को ढाल पाना अत्यंत मुश्किल होता है। और कई बार आप बहुत ज्यादा दूर चले जाते हैं। खासकर भारत में, यह संस्कृति है कि आप एक बार अपने पति के घर जाते हैं, तब वह परिवार आपका मुख्य परिवार बन जाता है और आपको अपने माता–पिता पर निर्भर रहने की आवश्यकता नही होती, माता–पिता ही आपको यह दबाव बनाते हैं कि तुम्हें इस परिवार में ढल जाना होगा। तब इस व्यक्ति द्वारा क्या किया जाना चाहिये? आपको पता है, मैं अक्सर पुरुषों से यह पूछती हूं कि यदि आपको यह करना पड़े तब, यदि आपको स्वयं को किसी अनजान परिवेश में जाकर उस परिवार को अपना मानकर आगे बढ़ना हो, तब क्या आप यह कर पाओगे?

सुब्रोतो बागची: इस मामले में फिर क्या पश्चिमी महिलाएं ज्यादा बेहतर हैं?

प्रभा चन्द्रा: यह संभव है कि उनके साथ इस प्रकार की परेशानी नही आती है। यह जटिलता हमारे भारतीय समाज में ही है। पश्चिम में, पति और पत्नी समान स्तर पर एक–दूसरे का साथ देते हैं।

सुब्रोतो बागची: समानता का भाव आ जाता है।

प्रभा चन्द्रा: और यह अपने आप में चुनौतियों से भरा होता है। लेकिन यहां पर महिला को ही सभी प्रकार से बदलना होता है, यहां तक कि उसका पति भी उससे अनजान होता है। वह उसके लिये मदद करने वाला इत्यादि नहीं होता है। वह अलग होता है।

सुब्रोतो बागची: तो डॉक्टर, आपके रोजाना के काम में, जब आप एनआईएमएचएएनएस में काम करती हैं, अलग–अलग प्रकार से कब अधिक लोग मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के साथ आते हैं?

प्रभा चन्द्रा: मुझे लगता है कि यह प्रश्न मेरे लिये है, यह हमेशा विवाह के तुरंत बाद सामने आता है। यह समय होता है जब बहुत सारी युवा महिलाएं इसका सामना करती हैं। या फिर ज्यादा सही कहें, तो महिलाएं जो कि बीस से तीस या पैंतीस के बीच की होती है। यह समय विवाह के बाद का समय होता है। और यह वह समय होता है जब विवाह के दो से तीन साल के बाद पति के परिवार के लोग यह सोचने लगते हैं कि महिला में कोई समस्या है, वह सबके साथ मिलकर रह नही सकती है और कई बार यह कहा जाता है कि "वह हमारा सुनती नही है" वह काम नही कर सकती है.... कल एक व्यक्ति मेरे पास आकर कहने लगा कि वह मेरे शर्ट का कॉलर अच्छे से धो नही सकती है। और यह कारण था कि उस व्यक्ति ने सोचा कि महिला के साथ कोई समस्या है। तो अपेक्षाएं तो बहुत ज्यादा होती हैं।

सुब्रोतो बागची: ऐसा लगता है कि पुरुषों को ही समस्या है।

प्रभा चन्द्रा: देखिये, आप जानते हैं, कई बार अपेक्षाएं इतनी ज्यादा होती हैं कि आप पर लेबल लगा दिये जाते हैं– वह धीमा काम करती है, वह रोजाना के काम नही कर सकती, उसके काम पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है न कि उसके साथ पर, या फिर उसकी आवाज सुनना और यह जानने का प्रयत्न करना कि उसे क्या हो रहा है। इसलिये मुझे लगता है कि यह काफी जटिल स्थिति है। और इससे पहले कि आपको कुछ और पता चले, वह गर्भवती होती है। इस प्रकार से उसके लिये सारी समस्याएं बढ़ जाती है और उसका कोई नियंत्रण गर्भ धारण और बच्चे से संबंधित नही होता है। अब इस महिला की बात लीजिये जो मेरे पास आज आई थी। उसके विवाह को तीन महीने हुए हैं। वह स्वयं फार्मासिस्ट है। उसे मानसिक स्वास्थ्य की समस्या है और वह

कहती है कि मैं यहां पर बच्चे के बारे में सलाह लेने आई हूं। उसका कहना है कि वह अभी बच्चे के लिये तैयार नही है। लेकिन उसका पति कहता है कि उसकी सास का कहना है कि उसे बच्चा चाहिये और हमें यह सुनना होगा। मुझे लगता है कि इस स्थिति में जो भी महिला होगी, वह नकारात्मक रुप से प्रभावित होगी ही। क्योंकि वह अभी मां बनने के लिये तैयार नही है और उसपर इतना दबाव है जिससे उसे मानसिक स्वास्थ्य की समस्या हो सकती है। इसलिये मुझे लगता है कि यह समय जटिलताओं से भरा होता है।

सुब्रोतो बागचीः चलिये मुझे पूछने दीजिये, कैसे पूछूं इस प्रश्न को। किसी व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्या है– जैसे कि इस महिला को जैसा कि आपने बताया, तब उसने क्या यह करना चाहिये, क्या यह सही है कि व्यक्ति बच्चा पैदा करे? यह बच्चा बहुत जोखिम में होगा क्योंकि जीवन साथियों में से एक या दोनों को मानसिक स्वास्थ्य की समस्या है?

प्रभा चन्द्राः सही है, तो सबसे पहली बात तो शादी को लेकर है। और दूसरी बात है बच्चे से संबंधित। अब प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह जीवनसाथी चुने और दोनों मिलकर यह अधिकार रखते हैं कि वे बच्चे के बारे में सोचे। तब आप यह सोचिये कि आपके अधिकार, आपकी सोच, सारे ही इससे जुड़े हैं। कोई भी व्यक्ति विवाह क्यों करता है, क्योंकि उसे साथी चाहिये होता है, बराबरी का साथी, कोई ऐसा जो उसकी देखभाल करे और जिसकी आप भी देखभाल कर सके। लेकिन सामाजिक स्तर पर बहुत अलग होता है। यह आपका नाम ऊंचा करने वाली घटना बन जाती है कि आप विवाहित है। अनेक माता–पिता महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को छुपाते हैं। और यह महिलाओं के लिये पुरुषों से ज्यादा है। और इस प्रकार से वे सोचते हैं कि उनका विवाह...

सुब्रोतो बागचीः फिक्स करें

प्रभा चन्द्राः जी हां, उन चीजों को फिक्स करें जो पूरी तरह से गलत है, और दूसरी बात यह है कि वे यह सोचते हैं कि...

सुब्रोतो बागचीः इससे शायद इसे और बढ़ावा मिले।

प्रभा चन्द्राः हां, क्योंकि इस प्रकार के तनाव से महिला गुजरती है। साथ ही, वे यह सोचते हैं कि यह सही है कि उसके होने वाले पति को इस बारे में न बताया जाए। क्योंकि आप जानते ही हैं कि कोई भी व्यक्ति अवसाद, तनाव आदि शब्दों को सुनने के बाद उससे शादी नही करेगा और मुख्य समस्या को लेकर कोई बाते नही होंगी।

सुब्रोतो बागचीः तो आपने उसे सहारा दिया।

प्रभा चन्द्राः मेरा कहने का अर्थ है, कि उन लोगों के मन में यही था कि वे उनकी बेटी के लिये सही कर रहे हैं। उन्हें चिन्ता है कि उनके बाद उसका जीवन कैसा होगा, इसकी देखभाल कौन करेगा। इसलिये उनके अनुसार वे सही कर रहे हैं।

सुब्रोतो बागचीः तो डॉक्टर, मुझे पता है कि हमारे पास समय कम है– मैं यह चाहूंगा कि आप हमें बताएं कि एक बेहतर तरीके से बिटिया के जन्म और उसके स्त्री होने तक की स्थिति को लेकर मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियां और समस्याएं कैसे सामने आती हैं। साथ ही इसमें कौन सी स्थितियां हैं जिसे लेकर चिकित्सा संबंधी समुदाय को कुछ ऐसा करना चाहिये कि जिस प्रकार से आज हम इस मुद्दे को हल कर रहे हैं, भविष्य में यह आसान हो सके?

प्रभा चन्द्राः देखिये, सबसे पहले तो मुझे लगता है कि हमें बच्ची के लिये, जन्म के साथ ही घर पर सुरक्षित वातावरण बनाना चाहिये।

सुब्रोतो बागचीः तो, यह पहचान लेने के बाद कि लड़कियां खासकर यौवनारंभ से पूर्व की स्थिति में ज्यादा जोखिम पर होती है। उसे इस प्रकार के लोगों के बीच रखा जाना चाहिये जो उसे सुरक्षा का एहसास करवाएं। तब बढ़ती उम्र में उसके लिये यौन संबंधी व्यवहार सही होगा?

प्रभा चन्द्राः मेरा कहना है कि हम उसका सम्मान करे, उसे मान्यता दें, यह सुनिश्चित करें कि वह सुरक्षित रहे, उसके पास अपना एक स्थान होना चाहिये जहां वह अपने बारे में बोल सके, उसकी बातें सुनी जा सके, उसे सही शिक्षा और स्रोतों की पार्श्वभूमि दी जानी चाहिये जिससे वह वास्तव में अपने निर्णय स्वयं ले सके। ये सबसे पहली बात है। दूसरी बात है उसे आगे समय के लिये तैयार करना। हारमोनल बदलाव आदि, उसे कौशल के साथ भी तैयार किया जाना चाहिये। लड़कियों को सामान्य रूप से वाद–विवाद निपटाने के कौशल नही सिखाए जाते, मेरा मतलब यह है कि ये तो लड़कों को भी नही सिखाए जाते लेकिन लड़कियों के लिये ये ज्यादा जरूरी इसलिये है क्योंकि वे किसी भी घटना की धुरी होती हैं। इसलिये उसे अपने विचारों और संवेदनाओं के साथ बेहतर तरीके से काम करना, स्वयं को शांत करना सिखाना होगा क्योंकि उसके सामने अनेक चुनौतियां आने वाली हैं। उसे मातृत्व के लिये तैयार करनाः मुझे लगता है कि यह महत्वपूर्ण है। यहां तक कि मानसिक रूप से बीमार महिला भी मां बन सकती है। और हम सभी ने अनेक स्थितियां देखी हैं कि कैसे वे बेहतर मां बन सकती है। इन सारी जटिलताओं के बाद, यदि वह तैयार नहीं है, तब वह इसे समाज के लिये, पति या सास ससुर के लिये कर रही है और इसमें जोखिम है। मेरा मानना है कि मां का तैयार होना सबसे महत्वपूर्ण है। क्योंकि बच्चा उसी के गर्भ में आना है और उसने स्वयं एक बेहतर नागरिक को तैयार करने के लिये तैयार होना चाहिये। इसलिये, मेरा विचार है कि महिला के जीवन पर सही मायनों में ध्यान दिये जाने की जरूरत है। और यहां पर मैं कहूंगी कि जीवन साथी की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है।

सुब्रोतो बागचीः तो, डॉक्टर, आपका बहुत–बहुत धन्यवाद जो इतनी अच्छी जानकारी आपने हमें दी। एक बात मैं यहां पर आपसे निवेदन करना चाहूंगा कि क्या आप महिला और मानसिक स्वास्थ्य को लेकर हमारे इतने बड़े श्रोता समूह को अपनी ओर से कोई सन्देश देंगी? या इस श्रोता समूह में कोई विशेष समूह जिन्हें आप मदद करना चाहें?

प्रभा चन्द्राः देखिये, मुझे लगता है कि यह हम सभी की जिम्मेदारी है कि किसी भी महिला के बेहतर मानसिक स्वास्थ्य को हम सुनिश्चित करें। लेकिन यदि मुझे कोई समूह चुनना होगा, तो मैं कहूंगी कि वे पुरुष है। क्योंकि मेरा सोचना है कि महिला एक पुरुष के जीवन का हिस्सा है और एक तरीके से वे जोखिम में भी हैं। इसलिये पुरुषों के कारण ही अनेक जटिलताएं पैदा होती हैं। पुरुष ही वे साथी होते हैं जिनसे महिला अपनी बात कह सकती है।

समर्पित

मीतो

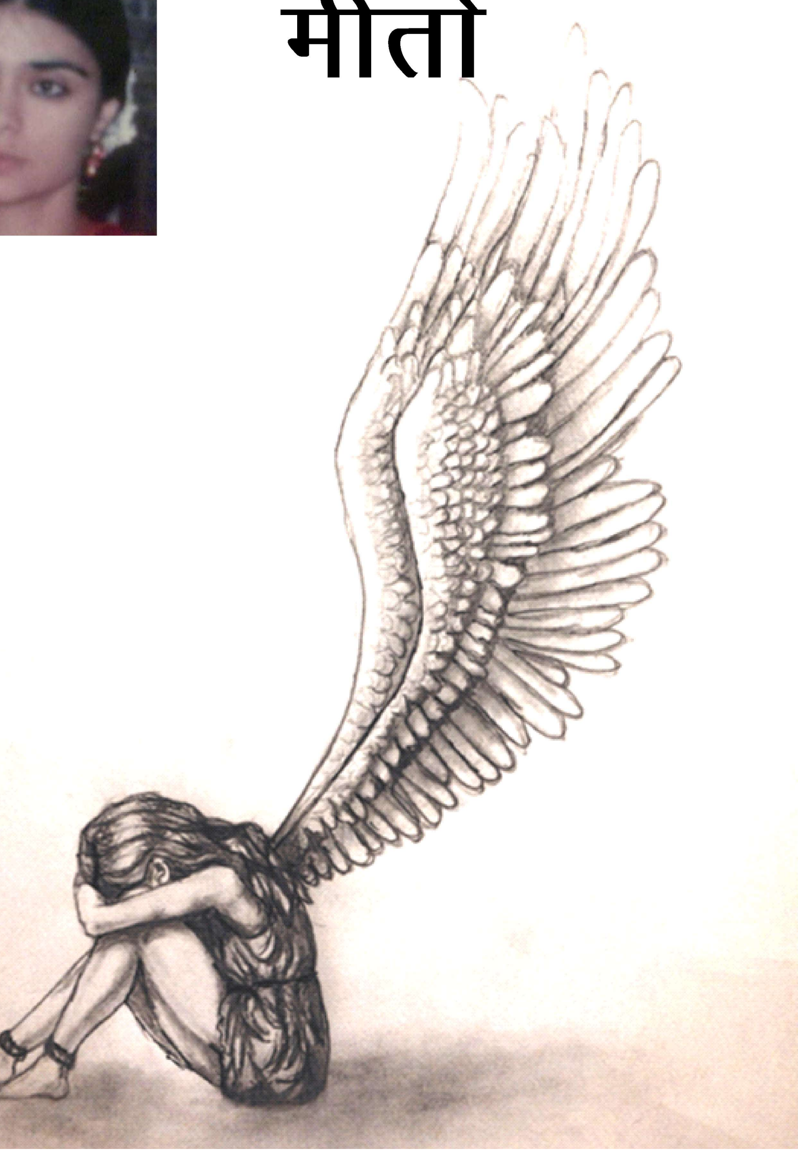

मेरी बेटी मीतो 2006 में हमें छोड़कर चली गई, जब वो 27 साल की थी। वो ऑक्सफोर्ड से पीएचडी कर रही थी, उसका प्रदर्शन शानदार था, वो एक प्यारे से रिलेशनशिप में थी और क्लीनिकल डिप्रेशन की शिकार थी...उसने आत्महत्या कर ली...

मुझे लगता है, ज्यादातर लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं कि अवसाद भी एक बीमारी है...लोग उस इंसान से सवाल करने लगते हैं जिसने ऐसा किया है, या वे दूसरों को इसके लिए जिम्मेदार ठहराना चाहते हैं...मुझे नहीं पता...

बहरहाल, मैं बस ये कहना चहती थी कि मुझे नहीं पता क्यों...लेकिन शैलेन्द्र सोढ़ी की ये खूबसूरत पंजाबी कविता मुझे मीतो की याद दिलाती है...

तूँ पाक खुदा दे नाँ वरगा
साहडे पिण्ड नूँ जांदे राह वरगा
तनु भुलिए वी ते किंज सजना
तूँ आंदी जांदी साह वरगा

(तू खुदा के नाम की तरह पाक है
जैसे हमारे गांव तक जाती हुई सड़क...
मैं तुझे कैसे भुला सकता हूं, मेरे प्यारे
तू तो है आती–जाती सांसों की तरह...
–हिन्दी अनुवाद)

हर सांस, हर क्षण...सचमुच...
कमला भसीन

(कमला भसीन एक जानी–मानी नारीवादी लेखिका, समाज सेविका और कवयित्री हैं। आजीविका और जेंडर के मुद्दे पर वे 27 साल तक संयुक्त राष्ट्र से जुड़ी रहीं। वर्तमान में वे स्वयंसेवी संगठन संगत–ए फेमिनिस्ट नेटवर्क, जागोरी रिसोर्स एवं ट्रेनिंग सेंटर तथा जागोरी रूरल चैरिटेबल ट्रस्ट से जुड़ी हुई हैं। वे 'पीस वीमेन अक्रॉस द ग्लोब' की ग्लोबल को–चेयर तथा 'वन बिलियन राइजिंग' की दक्षिण एशिया कोर्डिनेटर हैं। उनकी कविताओं ''क्योंकी मैं लड़की हूं'', व ''मुझे पढ़ना है'' को खूब सराहा गया)

महिलाएं और मानसिक स्वास्थ्यः एक अवलोकन

आम तौर पर लोगों का जितना ध्यान मानसिक रोगियों की संख्या पर रहा है, उतना न तो जेंडर से जुड़े इसके निर्धारकों पर और न ही उन तंत्रों पर जो मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाते हैं या उन्हें बढ़ने से रोकते हैं। मानसिक स्वास्थ्य सूचकों और आंकड़ों से जुड़े विश्लेषण बताते हैं कि महिलाओं में होने वाले मानसिक विकार और समस्याएं पुरुषों से भिन्न होती हैं।

सविता मल्होत्रा
रुचिता साह

(मनोचिकित्सा विभाग, पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीच्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च, चंडीगढ़)

स्त्री और पुरुष भिन्न हैं– न केवल शारीरिक संरचना में, बल्कि मानसिक अवस्थाओं में भी। संवाद करने, संबंधों को संभालने, भावनाओं को व्यक्त करने से लेकर तनाव में प्रतिक्रिया देने के मामलों में भी औरत और मर्द एक–दूसरे से अलग हैं। यही वजह है कि जेंडर भिन्नता शारीरिक अवस्था, शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान, इन सभी गुणों पर निर्भर करती है।

जेंडर के आधार पर भूमिकाओं को प्रागैतिहासिक काल से लेकर अत्यधिक सभ्य समाजों तक में सांस्कृतिक तौर पर परिभाषित किया गया है। शिकारी युग में जब पुरुष बड़े जंगली जानवरों के मांस के लिए उनके शिकार पर निकलते थे, तो महिलाएं आम तौर पर पौधों से मिलने वाले अनाज, छोटे जानवरों और मछलियों को भोजन के रूप में उपयोग करने तथा दुग्ध उत्पादों के विभिन्न प्रयोगों के बारे में सीखने की कोशिश करती थीं। नवीन इतिहास में, महिलाओं की भूमिका में बड़ा बदलाव आया है। पारंपरिक रूप से, महिलाएं आम तौर पर बच्चों को संभालने जैसे घरेलू कामों को संभालती आई हैं। हालांकि, गरीब औरतों को अपनी आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए घर से निकलकर काम भी करना पड़ता है। चूंकि उनकी योग्यता के हिसाब से बाजार में काम मर्दों की तुलना में कम है, इसलिए पारिश्रमिक भी उन्हें मर्दों के बनिस्पत बहुत कम ही मिलती है, अलबत्ता शोषण कहीं अधिक किया जाता है। समय के साथ बदलाव भी आया है और महिलाएं अधिक सम्मानजनक ऑफिस काम में शामिल होने लगी हैं। जाहिर है इसके लिए उन्हें उच्च शिक्षित होना आवश्यक है। लेकिन विडंबना ये है कि सभी सामाजिक–आर्थिक वर्गों से एक बड़ी संख्या में औरतों को रोजगार के लिए घर से बाहर निकलने के बाद भी घर के भीतर उनकी भूमिका में कोई बदलाव नहीं आया है; न ही उन्हें उनकी घरेलू जिम्मेदारियों से छुटकारा मिल पाया है। जेंडर हमेशा से मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक रोगों का अत्यंत महत्वपूर्ण निर्धारक रहा है। आम तौर पर लोगों का जितना ध्यान मानसिक रोगियों की संख्या पर रहा है, उतना न तो जेंडर से जुड़े इसके निर्धारकों पर और न ही उन तंत्रों पर जो मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाते हैं या उन्हें बढ़ने से रोकते हैं। मानसिक स्वास्थ्य सूचकों और आंकड़ों से जुड़े विश्लेषण बताते हैं कि महिलाओं में होने वाले मानसिक विकार और समस्याएं पुरुषों से भिन्न होती हैं। अवसाद, घबराहट एवं अनिर्दिष्ट मनोवैज्ञानिक तनाव पुरुषों की तुलना में महिलाओं में 2 से 3 गुना अधिक होता है; जबकि व्यसन, पदार्थों के उपयोग से जुड़े विकार और व्यक्तित्व विकार की समस्याएं पुरुषों में अधिक आम हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट इन निर्धारक तत्वों को प्रभावी ढंग से सामने रखती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की 2001 की एक रिपोर्ट में महिलाओं के मान. सिक स्वास्थ्य से जुड़े तथ्यः

- महिलाओं में अवसाद संबंधी विकार पुरुषों के 29.3 प्रतिशत की तुलना में 41.9 प्रतिशत है।
- बुजुर्गों में होने वाली मानसिक समस्याओं में मुख्य रूप से अवसाद, आर्गेनिक ब्रेन सिंड्रोम और डिमेंशिया है, तथा इसमें ज्यादा संख्या महिलाओं की है।
- हिंसक संघर्षों, गृह युद्धों, आपदाओं तथा विस्थापन के शिकार 50 मिलियन लोगों में से 80 प्रतिशत महिलाएं और बच्चे हैं।
- महिलाओं के विरुद्ध जीवन भर होने वाली हिंसा की दर 16 से 50

फोटोः www.sciencemag.org

प्रतिशत तक है।

- हर पांच में से एक महिला को अपने जीवन में बलात्कार या बलात्कार के प्रयास का शिकार होना पड़ता है।

सामान्य मानसिक विकार (सीएमडी)

सामान्य मानसिक विकार जैसे अवसाद, घबराहट और अन्य समस्याओं में जेंडर संबंधी भिन्नता की दर महिलाओं में अधिक है। 2020 तक पूरी दुनिया में मानसिक विकलांगता का दूसरा सबसे बड़ा कारण बनने जा रहे यूनिपोलर डिप्रेशन (एकध्रुवीय अवसाद), की दर महिलाओं में दोगुनी है। इससे भी बढ़कर, चिंता से जुड़े विकार (एंग्जाइटी डिसऑर्डर) की दर महिलाओं में दो से तीन गुना ज्यादा है।

अवसाद न केवल महिलाओं में होने वाला सबसे आम मानसिक विकार है, बल्कि यह पुरुषों की तुलना में महिलाओं में लगातार बना रहने वाला विकार भी है। यद्यपि स्त्री और पुरुष, दोनों में अवसाद के लक्षण लगभग एक समान ही होते हैं, फिर भी महिलाओं में यह कई बार असामान्य तथा ''रिवर्स वेजीटेटिव'' के तौर पर सामने आता है, यानी कि जरूरत से ज्यादा भूख लगना और मोटापा। महिलाओं के मामले में, अवसाद के लक्षण अधिक उभरकर सामने आते हैं और ज्यादा गंभीरता के साथ। भारत में हुए शोधों ने बताया है कि गरीबी के बाद अवसाद और घबराहट का संबंध सबसे स्पष्ट तौर पर महिलाओं से जुड़ा है। समुदाय आधारित शोधों और इलाज कराने वाले लोगों पर किए गए अध्ययन में स्पष्ट हुआ है कि सीएमडी से प्रभावित होने में महिलाओं की संख्या पुरुषों से करीब दो से तीन गुना ज्यादा है। इस आंकड़े पर विश्वास कर लेने के बाद सबसे अहम सवाल ये उठता है कि आखिर वे कौन से कारण हैं जो महिलाओं को मानसिक विकार का शिकार होने के लिए बाधित करते हैं। कई विद्वानों का मानना है कि प्रजनन चक्र से जुड़े हार्मोनल कारक इसका कारण हो सकते हैं। दूसरा कारण महिलाओं के साथ जेंडर के आधार पर किया जाने वाला भेदभाव को माना जा सकता है। इनमें पति का बहुत अधिक शराब पीना, पति द्वारा शारीरिक या यौन हिंसा करना, विधवा या परित्यकता होना, फैसले लेने में कोई स्थान नहीं मिलना अथवा परिवार से सहयोग नहीं मिलना शामिल हो सकते हैं।

इसके अलावा, महिलाओं के जीवन से जुड़ी कई घटनाएं भी होती हैं जो उन्हें अवसाद की ओर धकेलती हैं। अपने पूरे जीवनकाल में महिलाओं को कई तनावपूर्ण परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है, जैसे कि बच्चों को जन्म देना, मां की भूमिका निभाना, परिवार के बूढ़े और बीमार सदस्यों की देखभाल करना इत्यादि। इसके विपरीत, उनके पास शिक्षा और आय प्राप्त करने के साधन अत्यंत सीमित होते हैं। यहां तक कि, जो औरतें पढ़ी–लिखी और आर्थिक रूप से सुरक्षित हैं, वे भी सामाजिक रेखा को पार नहीं कर पाती हैं और इस प्रकार मानसिक रोगों की शिकार बन जाती हैं।

गंभीर मानसिक विकार

यह सच है कि गंभीर मानसिक विकार जैसे कि, सिजोफ्रेनिया और बाईपोलर डिसऑर्डर यानी दोध्रुवीय विकार, सीएमडी की तुलना में कम पाए जाते हैं, लेकिन ज्यादा समय तक बने रहने वाले सामान्य

मानसिक विकार और उससे जुड़ी अपंगता इन विकारों को गंभीर बना देती हैं। इसके अलावा, इन विकारों से जुड़ा सामाजिक कलंक न केवल पीड़िता को बल्कि पूरे परिवार को बड़े पैमाने पर प्रभावित करता है। साथ ही परिवार को उम्र भर कई और समस्याओं के साथ पीड़िता की देखभाल करनी पड़ती है। कहने की जरूरत नहीं है कि परिजनों को अत्यधिक आर्थिक और भावनात्मक तनाव से गुजरना पड़ता है।

गंभीर मानसिक रोगों, यथा सिजोफ्रेनिया तथा बाईपोलर डिसऑर्डर में जेंडर से जुड़ा कोई खास अंतर नहीं देखा गया है। बाईपोलर डिसऑर्डर के क्लीनिकल लक्षण स्त्री और पुरुषों में अलग–अलग हैं; औरतों में मर्दों की तुलना में अवसाद के लक्षण बार–बार देखे जाते हैं, और उनमें मूड का बदलना आम तौर पर जल्दी उभरने वाले होते हैं। हालांकि विभिन्न संस्कृतियों के बीच सिजोफ्रेनिया को लेकर किए गए एक बड़े अध्ययन में सामने आया है कि आम तौर पर महिलाएं इससे जल्दी उबर जाती हैं। यद्यपि वे इससे उबर तो जाती हैं, लेकिन उनके सामाजिक परिणाम महिलाओं को और भी अधिक कमजोर और पीड़ित बना देने वाले होते हैं। ससुराल से निष्कासित कर दिया जाना, बेघर हो जाना, यौन दुर्व्यवहार का शिकार होना तथा एचआईवी एवं उस जैसी अन्य संक्रामक बीमारियों का शिकार होना मानसिक रोगों के दुष्परिणाम के तौर पर सामने आते हैं। गंभीर रूप से मानसिक रोग की शिकार महिलाओं के साथ शारीरिक और यौन हिंसा के मामले सामान्य औरतों की तुलना में दोगुने होते हैं। सामाजिक कलंक का शिकार भी पुरुषों की तुलना में औरतें अधिक बनती हैं जबकि मानसिक रोगियों की सेवा करने वाली औरतों को भी इसे झेलना पड़ता है।

आत्महत्या

आत्महत्या और इसके प्रयासों को लेकर किए गए अध्ययनों से ये पता चलता है कि महिलाओं में आत्महत्या के प्रयास की प्रवृत्ति अधिक होती है जबकि पुरुषों में इसे अंजाम देने की प्रवृत्ति। हालांकि, दूसरे अन्य देशों के आंकड़ों को देखें तो चीन में महिलाओं की आत्महत्या की दर सबसे अधिक है। विद्वानों ने पाया है कि एकल परिवारों की लड़कियों और कम उम्र में विवाह करा दी गई युवतियों में आत्महत्या का प्रयास करने और खुद को नुकसान पहुंचाने की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा होती है। उम्र के आधार पर आत्महत्या करने की दर को देखें तो 18 से 29 वर्ष के बीच के युवक और युवतियों दोनों में आत्महत्या की दर सर्वाधिक होती है जबकि 10 से 17 वर्ष के बीच की लड़कियों में लड़कों की तुलना में आत्महत्या की दर ज्यादा होती है।

अपने अध्ययन में, ईमाइल दुर्खीम ने एक सदी पहले ही बता दिया था कि आत्महत्या की प्रवृत्ति के पीछे सामाजिक–सांस्कृतिक कारक होते हैं जो स्त्रियों और पुरुषों पर अलग–अलग प्रभाव डालते हैं। एक भारतीय अध्ययन में, एक साल में आत्महत्या के प्रयासों के मामलों की दर 0.8 प्रतिशत थी जिसमें से सात महिलाएं सीएमडी यानी सामान्य मानसिक विकार से प्रभावित थीं। सीएमडी, हिंसा और भूख आत्महत्या के प्रयासों के सबसे बड़े कारक थे। इन प्रयासों के पीछे बहुत बड़ा हाथ जीवन में असफलता, अंतर–वैयक्तित संबंधों में परेशानी और दहेज उत्पीड़न का भी है। भारत सरकार के आंकड़ों के मुताबिक, महिलाओं की तुलना में पुरुषों में आत्महत्या की दर इस प्रकार हैः दहेज को लेकर झगड़े (महिलाएं 2.9 प्रतिशत जबकि पुरुष 0.2 प्रतिशत), प्रेम प्रसंग (महिलाएं 15.4 प्रतिशत जबकि पुरुष 10.9 प्रतिशत) अवैध गर्भधारण (महिलाएं 10.3 प्रतिशत जबकि पुरुष 8.2 प्रतिशत), जीवनसाथी या सास–ससुर के साथ झगड़ा (महिलाएं 10.3 प्रतिशत जबकि पुरुष 8.2 प्रतिशत)।

हिंसा और दुर्व्यवहार

संयुक्त राष्ट्र की आंखे खोलने वाली एक रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में करीब दो–तिहाई विवाहित महिलाएं घरेलू हिंसा का शिकार थीं जबकि हिंसा की एक घटना के कारण किसी महिला को 7 दिन तक काम से दूर रहना पड़ता था। इससे भी अधिक, 15 से 49 वर्ष के बीच की 70 प्रतिशत से अधिक विवाहित महिलाएं पिटाई, बलात्कार या जबरन सेक्स की शिकार होती हैं। प्रजजन संबंधी भूमिकाओं, यथा गर्भधारण करना, बच्चों को जन्म देना, बच्चे पैदा न कर पाना तथा बेटा पैदा नहीं कर पाने जैसी परिस्थितियां औरतों को आत्महत्या की ओर धकेलती हैं।

सेवा का प्रावधान और उनका उपयोग

मनोवैज्ञानिक सेवाओं से जुड़े आंकड़े बताते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य सेवा केन्द्रों पर उपचार के लिए पहुंचने वाले मरीजों में तीन पुरुषों पर एक महिला होती है। इसके पीछे वो सामाजिक लांछना है जो मान. सिक रोग का उपचार कराने वाली औरतों को अपमान की दृष्टि से देखता है, या फिर औरतों के स्वास्थ्य को कमतर मानने वाली सामा. जिक सोच। मानसिक रोगों के उपचार के लिए औरतों का स्वास्थ्य केन्द्रों तक कम पहुंच पाना बहुत हद तक अस्पतालों में उनके मुता. बिक संसाधनों और माहौल की कमी के कारण भी है। मानसिक रोग अस्पताल आम तौर पर पुरुषों की चिकित्सा के लिहाज से बनाए जाते हैं। जेंडर संबंधी यह भेदभाव वहां बेड की उपलब्धता में भी दिखाई देता है। सरकारी मेंटल अस्पतालों में मर्दों और औरतों के लिए बेड की उपलब्धता का अनुपात 73 और 27 प्रतिशत है।

क्या करने की जरूरत है?

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महिलाओं का मानसिक स्वास्थ्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक एकांतवास से दुरुस्त नहीं हो सकता है। एक औरत का मानसिक स्वास्थ्य उसके पूरे जीवन चक्र के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य से जुड़ा है और उसके समाधान के लिए प्रजनन और मातृत्व स्वास्थ्य से परे जाकर सोचना होगा। न केवल किसी एक महिला के लिए बल्कि समुदाय के स्तर पर हरेक स्त्री को लक्ष्य करके हस्तक्षेप करना होगा। प्राथमिक देखभाल से लेकर वैधानिक और न्यायिक मोर्चे पर भी इन्हें लागू करना होगा। प्राथमिक स्तर पर सेवा प्रदान करने वालों को महिलाओं की प्रमुख स्वास्थ्य समस्याओं से अवगत होना होगा, उनसे समय–समय पर मानसिक स्वास्थ्य के बारे में जानकारी लेनी होगी, जरूरत पड़ने पर उपयुक्त सलाह और हस्तक्षेप करना होगा।

लॉकडाउन

तेरा दर्द न जाने कोय

चित्र:एपी

दीपिका झा

संपादक, मंजरी

कोरोना वायरस ने हमारी जिंदगी को पूरी तरह से उलट–पलट कर रख दिया है। एक अनदेखे शत्रु के साथ हमारी लड़ाई लंबी और हताश करने वाली है। इस अभूतपूर्व काल में लॉकडाउन, आइसोलेशन और क्वारन्टीन जैसी नई परिस्थितियों ने यूं तो हर किसी को प्रभावित किया है लेकिन पहले से ही घर की चारदीवारी में कैद औरतों पर इसका असर और भी गहरा हो रहा है। वर्ष 2000 में, विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया था कि जेंडर मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक रोगों के निर्धारण में एक बड़ा कारक है।

अपने एक अध्ययन में, डब्ल्यूएचओ कहता है कि भारत की 1.3 बिलियन आबादी में से 7.5 प्रतिशत यानी करीब 90 मिलियन किसी न किसी रूप में मानसिक विकार की शिकार है और इनमें से ज्यादातर को किसी प्रकार की मदद नहीं मिलती है। इसी तरह, निम्हान्स (NIMHANS) 2015–16 के एक शोध में कहता है कि करीब 150 मिलियन भारतीयों को मानसिक तौर पर किसी न किसी प्रकार के त्वरित सहयोग की आवश्यकता है लेकिन केवल 30 मिलियन को ही मदद मिल पाती है। ये स्थिति तब की है जब देश में कोरोना वायरस ने अपने कदम भी नहीं रखे थे। आज के हालात एकदम भिन्न और डरावने हैं। देश ही नहीं पूरी दुनिया लॉकडाउन और आइसोलेशन का सामना कर रही है। नौकरी–पेशा वाले लोग वर्क फ्रॉम होम, यानी घर से ही ऑफिस का काम कर रहे हैं, तो कारोबारियों के दुकान–प्रतिष्ठान पर ताला जड़ा है। भविष्य को लेकर कोई अनुमान नहीं है, हालात कब और कैसे सुधरेंगे।

होम और वर्क फ्रॉम होम दोनों

इन परिस्थितियों में महिलाओं पर चौतरफा दवाब बढ़ा है। डर, घबराहट, भविष्य और परिवार की चिंता चौबीसों घंटे उसी तरह उनके साथ बनी हुई हैं जैसे कि पति, बच्चे और परिवार के अन्य

सदस्य। कोरोना से पहले, बच्चों के स्कूल और पति के ऑफिस या दुकान जाने के बाद महिलाओं को कुछ समय अपने लिए मिलता था लेकिन अब वो भी नहीं मिल पा रहा है। अगर पति–पत्नी दोनों ही कामकाजी हों, तो परेशानी और भी गहरा जाती है। अमेरिकी अखबार न्यूयार्क टाइम्स के एक सर्वे में बताया गया कि 97 प्रतिशत महिलाओं ने माना कि लॉकडाउन में घरेलू कामकाज के साथ–साथ उन्हें बच्चों की पढ़ाई पर भी ध्यान देना पड़ा जबकि केवल 3 प्रतिशत ने कहा कि उनके पति ने भी इस पर ध्यान दिया। सर्वे में 20 प्रतिशत पतियों ने तर्क दिया कि घरेलू कामकाज और बच्चों की देखरेख की जिम्मेदारी पत्नियों की ही है। यह सर्वे लॉकडाउन के बाद अप्रैल में 2200 परिवारों पर किया गया था। कामकाजी दंपतियों के मामले में पाया गया कि 67 प्रतिशत महिलाएं वर्क फ्रॉम होम के साथ–साथ बच्चों को पढ़ा भी रही हैं जबकि पुरुषों की संख्या 29 प्रतिशत है। आर्गेनाइजेशन फॉर इकोनोमिक कोऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (ओईसीडी) के आंकड़े बताते हैं कि एक भारतीय महिला हर दिन करीब 6 घंटे अवैतनिक सेवा कार्य करती है, जबकि उनकी तुलना में पुरुष उन्हीं कामों में बमुश्किल आधा घंटा देते हैं। वैश्विक रूप से महिलाएं कुल घंटों का 76.2 प्रतिशत अवैतनिक कामों में व्यतीत करती हैं। यूनेस्को के मुताबिक, मौजूदा महामारी संकट के कारण दुनिया भर में 300 मिलियन बच्चे स्कूल नहीं जा पा रहे हैं और घरों के भीतर मांओं पर उनकी जिम्मेदारी बढ़ी है।

बढ़ा तनाव और घबराहट

मार्च के अंत में केएफएफ के कोरोना वायरस के प्रभाव से जुड़े एक सर्व में पाया गया कि महिलाओं में (53%) पुरुषों की (37%) तुलना में चिंता और घबराहट का स्तर करीब 16 प्रतिशत अधिक था। सर्वे में पाया गया कि लॉकडाउन का समय बढ़ने के साथ–साथ यह संख्या और भी अधिक हो गई है। विशेषज्ञ मानते हैं कि इसके पीछे घर में कैद होने के अलावा महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता का समाप्त होना भी है। पुरुषों की तुलना में औरतें ज्यादातर कम सुरक्षा और आमदनी वाले काम से जुड़ी होती हैं। कोरोना वायरस के बढ़ते खतरे को रोकने के लिए हुए लॉकडाउन में जिन लोगों ने अपने रोजगार और नौकरी गंवाई, औरतें उनमें सबसे आगे हैं। ऐसे में अपने आर्थिक भविष्य और पति एवं ससुराल पर बढ़ती निर्भरता उनके मानसिक अवसाद का मुख्य कारण हैं। कैसर फैमिली फाउंडेशन द्वारा कराए गए एक सर्वे के अनुसार, कोविड–19 संकट के कारण नौकरी जाने का मानसिक प्रभाव औरतों पर कहीं ज्यादा पड़ा है। यहां पर भी उच्च पदों पर कार्यरत औरतों में मानसिक तनाव, अवसाद और अकेलापन अधिक देखने में आ रहा है। अमेरिकी विशेषज्ञ मानते हैं कि रोजगार में हर 1 प्रतिशत की कमी युवाओं और महिलाओं में आत्महत्या की प्रवृत्ति को 1 प्रतिशत और बढ़ा देती है। कैम्ब्रिज, ऑक्सफोर्ड और ज्यूरिख विश्वविद्यालयों द्वारा लॉकडाउन की अवधि में अमेरिका के 8000 लोगों पर किए गए एक शोध के नतीजे निराशाजनक रहे। शोध में पाया गया कि कोरोना काल का महिलाओं और पुरुषों दोनों के मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ा है लेकिन महिलाओं पर इसका असर चौंकाने वाला है। इसने अमेरिका में मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में जेंडर गैप को 66 प्रतिशत तक बढ़ा दिया है।

प्रवासी मजदूरों का दर्द

जहां तक भारत का सवाल है, विशेषज्ञ मानते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में अवसाद और यहां तक कि आत्महत्या तक का स्तर तेजी से बढ़ सकता है। प्रवासी मजदूरों का काम बंद होना और अपने राज्यों में लौटने के बाद भी पर्याप्त काम न मिलना उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। यहां पर भी औरतों की स्थिति अधिक चिंताजनक है। मीलों तक की लंबी दूरी, कई–कई दिनों तक पैदल चलने की मजबूरी और उस पर महिला होने का दर्द, उन्हें सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक और मानसिक तौर पर सबसे अधिक भेद्य बनाती है। कोरोना काल के दौरान मजदूरों द्वारा नशा का सेवन अत्यधिक किए जाने की आशंका अधिक है। ज्यादा से ज्यादा मजदूरों के शराब की लत अपनाने का न केवल उनके बल्कि उनके परिवार के स्वास्थ्य पर भी सीधा असर पड़ता है जिसमें शारिरिक के अलावा मानसिक स्वास्थ्य भी मुख्य रूप से शामिल है।

सितारे–जिन्होंने अवसाद को दी मात

ज्यादातर समाजों में टैबू माने जाने वाले मानसिक स्वास्थ्य के बारे में जब जाने–माने लोग भी अपनी कहानी लेकर सामने आते हैं तो उस पीड़ा से गुजर रहे लोगों के साथ–साथ पूरे समाज के लिए वे एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। न सिर्फ हमारे देश में बल्कि पूरी दुनिया में हर क्षेत्र से ऐसे कई नाम हैं जिन्होंने अपने जीवन में कभी न कभी मानसिक पीड़ा का सामना किया है। लेकिन सही उपचार और दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर समाज के सामने असली हीरो बनकर दोबारा लौटे हैं।

दीपिका पादुकोण

बॉलीवुड का बड़ा नाम, दीपिका पादुकोण को एक और काम के लिए जाना जाने लगा है, और वो है अवसाद तथा मानसिक रोगों से जूझ रहे लोगों के हित में सामने आना। खुद अवसाद का शिकार रह चुकीं दीपिका ने अपनी इस अवस्था को छिपाया नहीं, बल्कि खुद तो इससे उबरीं ही, अब औरों को भी इससे बाहर निकलने के लिए प्रेरित कर रही हैं। अवसाद और मानसिक रोग से पीड़ित लोगों के लिए उन्होंने 'दोबारा पूछो' अभियान चलाया जिसका मकसद मानसिक रोगों से जुड़े कलंक को समाप्त करना था। मानसिक रोगियों के बारे में समाज में मौजूद गलत अवधारणाओं को दूर करने को लेकर दीपिका का 'लिव लव लाफ फाउंडेशन' पीड़ितों तक उचित चिकित्सा सुविधा और जानकारियां भी उपलब्ध करा रहा है। दीपिका कहती हैं, ''मैं वो सब अनुभव नहीं करना चाहती थी जो मैंने किया, और यही वजह रही कि मैं इस संवेदनशील मुद्दे को लेकर सामने आई। समस्या रोग से नहीं है बल्कि इससे जुड़ी सामाजिक सोच से है। जिस दिन हम सब मिलकर उस सोच से बाहर निकल आएंगे और इस मुद्दे पर जागरूक हो जाएंगे, हम इस लड़ाई को जीत जाएंगे।''

करण जौहर

मशहूर फिल्म निर्माता करण जौहर अवसाद के साथ अपने संघर्ष को सार्वजनिक तौर पर स्वीकार कर चुके हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था, ''एक दिन अचानक ही एक मीटिंग के दौरान ऐसा लगा कि मुझे हार्ट अटैक आ गया है। मैं मीटिंग छोड़कर डॉक्टर के पास भागा, जहां उन्होंने बताया कि मुझे एंग्जायटी अटैक हुआ है। इसके बाद मैं मनोवैज्ञानिक के पास गया। मुझे अहसास हुआ कि मेरे मन के भीतर कुछ गड़बड़ी चल रही है और इसकी वजह से मुझे घबराहट का दौरा पड़ा।'' उन्होंने कहा, ''उपचार के उन सत्रों के दौरान मुझमें बड़ा बदलाव आया। मैंने जाना कि अपने बीते जीवन के कई सदमों को मैंने ठीक ढंग से नहीं संभाला था। पिता की मौत के 11–12 साल बीत जाने के बाद भी उसका सदमा तथा अपने दूसरे कई रिश्तों का दर्द मैं अपने भीतर ही लिए घूम रहा था। भविष्य का भय और जीवनसाथी नहीं ढूंढ पाने का डर मेरे अंदर मौजूद था। एक समय ऐसा भी था जब मेरे जीवन में प्यार की कमी थी और वो कुंठा मुझ पर हावी हो रही थी। आज मैं आजाद महसूस करता हूं। मुझे लगता है कि दुनिया में आगे बढ़ने के लिए और भी कई चीजे हैं।

मनीषा कोईराला

'ईलू ईलू गर्ल' मनीषा कोईराला ने न केवल अवसाद पर विजय पाई है बल्कि वे कैंसर जैसी घातक बीमारी की भी विजेता रही हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया था, ''मैं अपने बीते जीवन के बारे में बहुत ज्यादा सोचने लगी थी और मुझे लगता था कि मैंने अपना जीवन पूरी तरह नहीं जिया, उसे बर्बाद कर दिया। इस नकारात्मक सोच ने मेरे भीतर घर कर लिया था। मैं हमेशा मरने के बारे में सोचा करती थी। मैं उदास रहने लगी थी। मैंने हर किसी से अपने आप को दूर कर लिया था। लेकिन अब मैं उन सबसे आगे निकल चुकी हूं। मुझे वैसा नहीं करना चाहिए था। मुझे लोगों से बात करनी चाहिए थी– सबसे नहीं, लेकिन कम से कम अपने सबसे करीबी व्यक्ति से।'' उन्होंने कहा, ''मैंने अपने जीवन का सबसे अच्छा और सबसे बुरा, दोनों दौर देखा है। मैंने तय कर लिया है कि अब मैं हार नहीं मानूंगी। मैं मानती हूं कि अंत में वही होता है जो भगवान चाहते हैं, लेकिन मुझे हमेशा अपना सर्वश्रेष्ठ देना चाहिए।'' बॉलीवुड की बेहतरीन अभिनेत्रियों में से एक, मनीषा कोईराला ने अवसाद के साथ ही साथ कैंसर के दर्द को भी झेला है और उसे जीता भी है।

विजेता

अनुष्का शर्मा

हिन्दी फिल्म इंडस्ट्री की सबसे खूबसूरत और सफल अदाकाराओं में से एक अनुष्का शर्मा भी उन हस्तियों में से हैं जिन्होंने अवसाद से संघर्ष की अपनी कहानी को दुनिया के सामने उजागर किया ताकि जो आम लोग इससे पीड़ित हैं, वे भी किसी भ्रांति में न आएं और अपना सही उपचार कराएं। अपनी फिल्म 'जब हैरी मेट सेजल' के प्रमोशन के दौरान अनुष्का शर्मा ने बताया था कि वो हमेशा घबराई हुई रहती थी और एक दिन उनकी मां के बार–बार पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि उन्हें हर छोटी चीज की चिंता हो जाती है और वो परेशान हों उठती हैं। अनुष्का ने इस बारे में खुल कर बात करते हुए ट्वीट भी किया था, ''मुझे घबराहट होती है। मैं इस घबराहट का इलाज करवा रहीं हूं। हां, मैं अपनी इस घबराहट के लिए दवाईयां भी ले रहीं हूं। और मैं यह सब क्यूं कह रहीं हूं? क्योंकि यह एक आम बात है। यह एक सामान्य सी समस्या है, मेरे परिवार में कई लोग इससे जूझ चुकें हैं। इस बारे में ज्यादा से ज्यादा लोगों को खुल कर बात करनी चाहिए। इसमें शर्म और छुपाने जैसी कोई बात नहीं हैं। अगर आपको पेट दर्द है तो आप डॉक्टर के पास नहीं जाते क्या? मुझे इन बातों से शर्म नहीं आती और मैं चाहती हूं कि आपको भी न आए।'' उन्होंने लिखा था कि वे इसे एक मिशन के तौर पर लेना चाहती हैं कि ताकि मानसिक रोगों से जूझ रहे लोगों को जागरूक कर सकें। ऐसा सबके साथ होता है, जब आप किसी सदमे से गुजरते हैं तो आपको पता ही नहीं होता है कि आप उसके बोझ को अपने साथ लेकर घूम रहे हैं और वो धीरे–धीरे आपको निगल रहा है।

विराट कोहली

न केवल फिल्मी हस्तियां बल्कि खेल की दुनिया में भी ऐसे कई सितारे रहे हैं जिन्होंने कभी न कभी अवसाद या घबराहट का सामना किया है। क्रिकेट सुपरस्टार विराट कोहली ने भी अवसाद के अपने दिनों के बारे में मीडिया के सामने स्वीकार किया है। ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेटर ग्लेन मैक्सवेल द्वारा यह कहे जाने के बाद कि वे अवसाद से मुक्त होने के लिए क्रिकेट से अनिश्चितकालीन अवकाश लेने जा रहे हैं, कोहली ने 2019 के अंत में यह स्वीकार किया कि करीब पांच साल पहले वे भी ऐसे ही दिनों से गुजर चुके हैं। एक प्रेस वार्ता में उन्होंने कहा था, ''अपने करियर में मैं एक ऐसे समय से गुजर चुका हूं जब मुझे लगता था कि अब सब कुछ खत्म हो चुका है। मैं समझ नहीं पाता था कि मुझे दूसरों के साथ कैसे बात करनी चाहिए, मुझे क्या करना चाहिए, मुझे क्या कहना चाहिए। ईमानदारी से कहूं तो मैं ये नहीं कह सकता कि मानसिक तौर पर मैं बहुत अच्छा महसूस कर रहा था। मुझे खेल से दूर जाने की जरूरत महसूस हो रही थी। जब आप किसी अंतरराष्ट्रीय मंच पर होते हैं, तो हर खिलाड़ी में संवाद करने, बात करने की वो क्षमता होनी चाहिए।'' उन्होंने कहा कि आज जो ग्लेन ने किया है वो अद्भुत है। उन्होंने पूरी दुनिया के क्रिकेटरों के सामने एक उदाहरण पेश किया है। विराट कोहली भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान हैं और अपने धाकड़ अंदाज से उन्होंने पूरी दुनिया में अपना लोहा मनवाया है। उनके मुताबिक अवसाद की चपेट में वे तब आए थे जब पांच साल पहले एक टूर्नामेंट में वे अच्छा स्कोर नहीं कर पाए थे। कोहली के मुताबिक देश में मानसिक रोगों को लेकर फैली भ्रांतियों को दूर करने की जरूरत है।

इलियाना डिक्रूज

बॉलीवुड अभिनेत्री इलियाना डिक्रूज बॉडी डिस्मॉर्फिक डिसऑर्डर से ग्रस्त रही हैं और अपने अवसाद तथा एंग्जाइटी डिसऑर्डर के बारे में उन्होंने सार्वजनिक रूप से बात भी की है। खूबसूरत अभिनेत्री इलियाना लंबे समय तक सुनहरे पर्दे से गायब रहने के बाद अजय देवगन के साथ 'बादशाहो' में नजर आई थीं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था, ''मैं कोने में बैठी रहती थी, और रोती रहती थी।'' इलियाना एक ऐसी मानसिक बीमारी से पीड़ित थीं जिसमें किसी व्यक्ति को ऐसा लगने लगता है कि उसका शरीर बदसूरत है और वो घंटों आइने के सामने खड़ा रहता है। अपने अनुभव से इलियाना मानती हैं कि हर किसी को खुद की जांच करती रहनी चाहिए और यह बहुत जरूरी है। मानसिक स्वास्थ्य एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। उन्होंने कहा था, ''अवसाद से मेरी लड़ाई लंबी रही है। मेरे लिए मेरा अवसाद काम को लेकर नहीं था, बल्कि मेरे खुद को लेकर था। मैं जब नई–नई इंडस्ट्री में आई थी तो खुद को यहां के हिसाब से फिट नहीं पाती थी। मैं बॉडी डिस्मॉर्फिक डिसऑर्डर से पीड़ित रही हूं। यह ऐसी अवस्था है जब आप अपने शरीर के किसी एक हिस्से को लेकर चिंतित हो जाते हैं कि यह कितना बुरा है। मेरे साथ ऐसा ही हो रहा था। मैंने इलाज कराया। लेकिन फिर एक समय आया जब मुझे लगा कि मैं मैगजीन के कवर पर दिखने वाली दुबली, परफेक्ट और कवर की गई लड़की नहीं हूं, मैं वही हूं जो मैं हूं। परफेक्ट बॉडी जैसी कोई चीज नहीं होती। मैंने अपने आप से सवाल किया कि क्या मैं दूसरों के इशारे पर अपनी बॉडी को बदलती रहूंगी? मैंने खुद को संदेश दिया कि स्वस्थ रहो और खुश रहो।

वो दिन जो डराते हैं औरतों को

विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि 2020 तक 20 प्रतिशत भारतीय किसी न किसी मानसिक बीमारी से पीड़ित होंगे। पुरुषों की तुलना में महिलाओं में मानसिक बीमारी से प्रभावित होने की संभावना 25 प्रतिशत ज्यादा होती है। यह अवसाद और उत्कंठा जैसे सामान्य मानसिक विकारों के लिए विशेष रूप से सत्य है। यह मामले महिलाओं में होने वाले हार्मोनल असंतुलन से और बढ़ जाते हैं।

मासिक प्रजनन चक्र के अनुसार महिलाओं का हार्मोनल स्तर बदलता रहता है। एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन जैसे हार्मोन किसी महिला के प्रजनन स्वास्थ्य, जैसे मासिक धर्म, गर्भावस्था और रजोनिवृत्ति को प्रभावित करते हैं, और अन्य हार्मोन उनकी मना. `दशा और व्यवहार को भी प्रभावित कर सकते हैं। अवसाद और उत्कंठा जैसी बीमारियां हार्मोन के उतार–चढ़ाव से जुड़ी हुई मानी जाती हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि इन बीमारियों के प्रति महिलाएं अधिक संवेदनशील क्यों हैं।

महिलाओं की मनःस्थिति और उनके व्यवहार को प्रभावित करने वाली मुख्य समस्याओं में शामिल हैं:

प्री–मेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम (पीएमएस)

पीएमएस यानि प्री–मेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम में उन लक्षणों का मिश्रण होता है जो मासिक धर्म शुरू होने से पहले महिलाएं अनुभव करती हैं। अनुमान के मुताबिक हर 4 में से 3 महिलाएं किसी न किसी रूप में पीएमएस का अनुभव करती हैं। पीएमएस के सामान्य व्यवहार और भावनात्मक लक्षणों में मूड बदलना, परेशान रहना, चिंतित या चिड़चिड़ापन और थकावट या नींद न आने जैसे लक्षण शामिल हैं। अन्य लक्षणों में समाज से दूरी बना लेना, एकाग्रता में कमी और दुखी रहना शामिल है। हार्मोन में चक्रीय परिवर्तन के साथ ही मस्तिष्क में होने वाले रासायनिक परिवर्तन के कारण इस स्थिति में और इजाफा हो जाता है। गंभीर पीएमएस वाली महिलाओं के अवसादग्रस्त होने की आशंका रहती है।

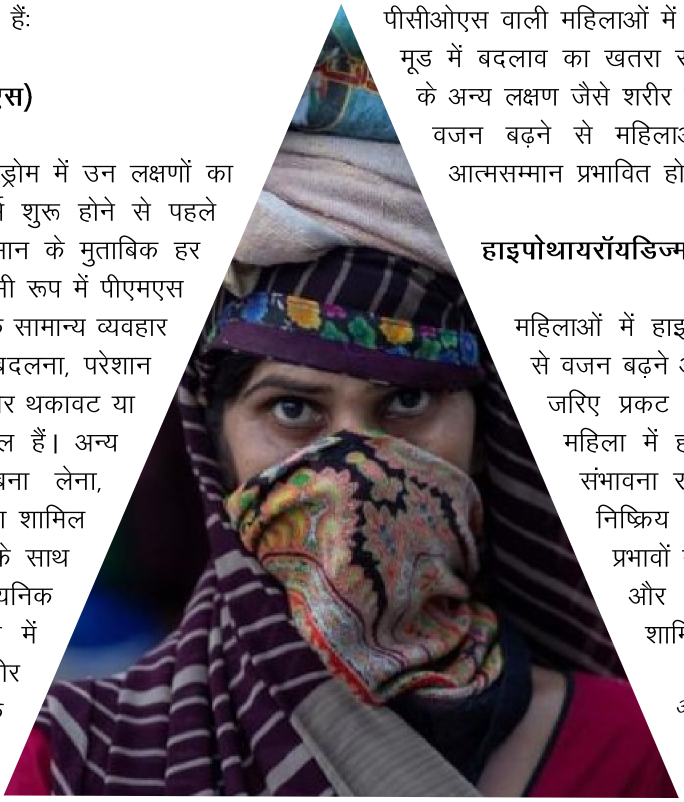

प्रीमेन्स्ट्रुअल डिस्फोरिक डिसऑर्डर (पीएमओडी)

5 से 8 प्रतिशत महिलाओं को ऐसे लक्षणों का अनुभव होता है, जो उन्हें निष्क्रिय कर सकते हैं, एवं उनके रोजमर्रा के कार्यों या सामाजिक कामकाज को प्रभावित कर सकते हैं। इस तरह की कई महिलाओं में प्रीमेंस्ट्रुअल डिस्फोरिक डिसऑर्डर (पीएमओडी) की पूरी आशंका रहती है। पीएमडीडी से ग्रस्त महिलाओं में मूड और व्यवहार संबंधी लक्षण दिखना, जैसे चिड़चिड़ापन, उदासी, तनाव और मूड खराब रहना, आम है।

पॉलीसिस्टिक ओवेरी सिंड्रोम (पीसीओएस)

पीसीओएस हार्मोनल असंतुलन की स्थिति होती है जिसके कारण महिलाओं में बांझपन, मोटापा और चेहरे पर बहुत ज्यादा बाल आने जैसी परेशानियां पैदा होती हैं। पीसीओएस के कारण उत्कंठा, अवसाद और खाने में गड़बड़ी सहित गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं। रिसर्च बताते हैं कि पीसीओएस वाली महिलाओं में विशेष रूप से अवसाद और मूड में बदलाव का खतरा रहता है, जबकि पीसीओएस के अन्य लक्षण जैसे शरीर पर अनचाहे बाल आना और वजन बढ़ने से महिलाओं का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान प्रभावित हो सकता है।

हाइपोथायरॉयडिज्म

महिलाओं में हाइपोथायरॉयडिज्म विशेष रूप से वजन बढ़ने और अवसाद जैसे लक्षणों के जरिए प्रकट होता है। हर 8 में से 1 महिला में हाइपोथायरॉयडिज्म होने की संभावना रहती है। असामान्य रूप से निष्क्रिय थायरॉयड ग्रंथि के अन्य प्रभावों में मूड स्विंग्स, नींद न आना और याददाश्त की समस्याएं शामिल हैं।

आभारः लिव लव लाफ फाउंडेशन

चिंतनीय

देश में हर पाँच मिनट में होती है एक आत्महत्या!

जो मुझे पढ़ रहे या समझ रहे हैं, मेरी बात को समझिए। मेरा ये आग्रह मेरी जान बचाने का नहीं है, मेरा आग्रह आपकी और आप ही के आस–पास के लोगों जिसमें आपके दोस्त, परिजन, डियर वंस, नियर वंस, आपके प्रेमी–प्रेमिका या कोई भी हो, आते हैं, की जान बचाने का है। मनोवैज्ञानिक टर्म्स यूज किए बिना बात करने की कोशिश करूँगी ताकि आसान रहे समझना आपके लिए।

दोस्तों, जरा थम कर पढ़िए।
'देश में हर पाँच मिनट में एक आत्महत्या होती है।'
कैसा लगा पढ़कर जानकर! थम गए क्या!

कल किसी ने लिखा कि गरीब आत्महत्या नहीं करते। भाई प्लीज इतनी हल्की बातें मत लिखा कीजिए। अच्छा नहीं लगता है ये सब। बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता है। थोड़ी सी रिसर्च तो करनी ही चाहिए, ज्यादा ना कर पाएँ तो। खैर...

आत्महत्या के मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर मैं लिखती ही रहती हूँ, काफी लिखा भी है। आप लोग तब विचलित होते हैं जब आपके सामने किसी प्रसिद्ध शख्सियत की आत्महत्या की खबर आती है या कोई आपका करीबी रहा हो। मेरे लिए रोज का काम है इसलिए मेरी बात सुनिए आप।

हर आत्महत्या के पीछे डिप्रेशन हो ये जरूरी नहीं लेकिन हर डिप्रेशन से गुजर रहा इन्सान आत्महत्या की सोचता ही है एक ना एक बार और अगर एक्यूट डिप्रेशन से जूझ रहा है तब तो जाने कितनी बार। तो आप इससे क्या समझे! इससे ये समझिए कि आप आत्महत्या कर चुके इन्सान के अपनी जान लेने वाले कारणों पर ध्यान ना देकर फिलहाल जो डिप्रेशन से गुजर रहा है उस पर ध्यान दीजिए और उसको बचाइए अगर बचाना चाहते हैं तो।

मैंने देखा लोग बहुत चिंतित हो गए रातोंरात आत्महत्याओं को लेकर और अगर मैं अभी पुरुष और महिलाओं की आत्महत्या का आँकड़ा, जेंडर आधारित अंतर और वजह माँग लूँगी तो इनको गूगल करना पड़ जाएगा और बता दूँ कि वहाँ हर आँकड़ा सही है भी नहीं क्योंकि जो दर्ज ही नहीं कागजों में वो कहाँ से लाइएगा! मैं ब्लंट हूँ कुछ मामलों में और रहूँगी क्योंकि लोग जब मेरे पास आकर रोते हैं कि वो मरना चाहते हैं तब मुझे इन फर्जी लोगों के चेहरे दिखते हैं जिनको किसी की तस्वीर देखकर पता चलता है कि, 'ओह! आत्महत्याएँ हो रही हैं इधर तो!' और इन्हीं के परिजन और दोस्त मुझसे इलाज ले रहे हैं इसलिए ऐसे लोगों के प्रति ना तो मेरे पास प्रेम है और ना इज्जत। अफसोस जरूर है कि मैं इनकी नेम ड्रॉपिंग नहीं कर पाई एथिक्स की वजह से।

दोस्तों, जो मुझे पढ़ रहे या समझ रहे हैं, मेरी बात को समझिए। मेरा ये आग्रह मेरी जान बचाने का नहीं है, मेरा आग्रह आपकी और आप ही के आस–पास के लोगों जिसमें आपके दोस्त, परिजन, डियर वंस, नियर वंस, आपके प्रेमी–प्रेमिका या कोई भी हो, आते हैं, की जान बचाने का है। मनोवैज्ञानिक टर्म्स यूज किए बिना बात करने की कोशिश करूँगी ताकि आसान रहे समझना आपके लिए।

भारती गौड़

(मनोवैज्ञानिक तथा पूर्व काउंसलर,
भारत सेवक समाज

1. आत्महत्या बनाम समाज

बहुत सारी तकलीफें मोल ली हुई होती हैं क्योंकि आपने अपने नॉर्म्स इस समाज के अनुसार तय किए हैं और जब उनमें सेंध लगती है तब आपके बने बनाए मेंटल सेट बिगड़ जाते हैं। तब होता है तनाव। तब होती है एन्जायटी, तब मचते हैं बवाल। इस तनाव की श्रृंखला में पहला सोपान है आपका 'वो चार लोग', ये जबरदस्ती का मोल लिया हुआ सोपान है जिसमें आप खुद फंसे और अपने साथ वालों को भी बाँध कर रख दिया। भीड़ को संतुष्ट करने की ग्रंथि को अपने हाथ में रखिए वो दूसरों के हाथ में मत दीजिए।

2. डिप्रेशन बनाम चुनाव

2.1 **बी बोल्ड**– चीजों को और लोगों को चुनने की आदत डालिए। बोल्ड बनिए। सिर्फ सरकारें ही चुनने में मुस्तैदी मत दिखाइए। अलर्ट रहिए डे टू डे की लाइफ में चीजों और लोगों के चुनाव में। इतने बोल्ड बनिए कि ना के वक्त ना और हाँ के वक्त हाँ कह सके। कोई इन्सान माँ के पेट से बोल्ड बनकर नहीं आता है, बनना पड़ता है उसके लिए होमवर्क करना पड़ता है।

2.2 **प्रैक्टिस**– बोल्ड बनने की प्रैक्टिस कीजिए और तनाव में बोल्ड बनना क्या है वो ऊपर वाले बिंदु में मिलेगा। आदत और अनुशासन के बिना उम्मीद मत पालिए कि कुछ ठीक भी हो सकता है। नहीं होता है और ना होगा। हर वक्त लाचारी का मातम मत फैलाइए। खुद पर दया तब तक ही कीजिए जब तक वो सेल्फ टॉर्चर के दायरे में ना आती हो।

2.3 **फिल्टर**– सिर्फ तस्वीरों में ही नहीं जिंदगी में भी अच्छे–खासे फिल्टर लगाइए। तनाव अपने आप नहीं उपजता इसका बाकायदा कारण होता है। ये बेवजह हो ही नहीं सकता। जानकारियों में, रिश्तों में, आगे बढ़कर समस्याओं को गले लगाने में, बहस में, वाद–विवाद में, संगीत से लेकर पढ़ी जा रही चीजों तक में फिल्टर की आवश्यकता होती है खासकर मौजूदा दौर में जब सब कुछ एक क्लिक पर उपलब्ध हो। और वो एक क्लिक न सिर्फ एक लिंक भर खोलता है बल्कि आपकी जिंदगी को हिला देता है। लोग और चीजें भी उस लिंक की तरह ही है। इसलिए लगाइए फिल्टर।

3. **गो विद योर इमोशंस (अपने संवेगों के साथ जाइए)**– हर संवेग की एक जरूरत है, उसका अपना एक स्पेस है। दूसरों के संवेगों को सेटिस्फाई करने से पहले ये चेक कीजिए कि पहले खुद को किया या नहीं! बिना खुद शांत हुए दूसरों को शांत करने की जिद मूर्खता की जद में होती है, याद रखिए।

4. **विचारों को निकलने का रास्ता दीजिए**– जबरदस्ती हर विचार को अचेतन में मत फेंकिए। आपको लगता है कि मैंने तो दबा दिया विचार लेकिन आपका अचेतन बहुत बेरहम होता है क्योंकि आप भी उसे डंप यार्ड की तरह यूज करते है सो वो भी अपना रूप दिखाता है और आप पर अचानक धावा बोलता है जिसे आप विचारों का बवंडर कहते हैं। पानी अपना रास्ता खुद बनाता है उसकी क्षमता से ज्यादा स्टोर कीजिएगा तो वो बाँध की दीवार तोड़कर बाढ़ नहीं लाएगा तो क्या करेगा! आप आए ना उसके रास्ते में! अचेतन आपका एक आइस बर्ग है, बर्फ की चट्टान। जितना दिखता है उसका तीन–चौथाई अंदर

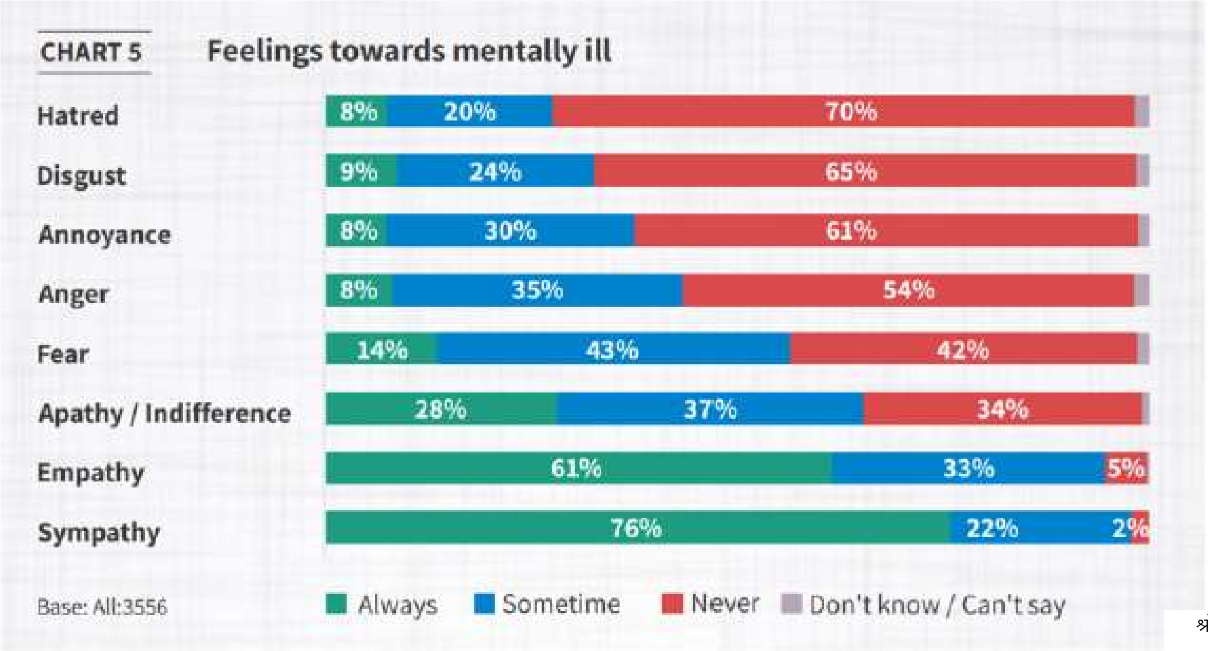

श्रोतः सर्वे टीएलएलएलएफ

है वो तो समझ लीजिए अगर वो फटा तो आप किधर बहेंगे आपको नहीं पता। विचारों को दबाइए मत उन्हें आने दीजिए अच्छे–बुरे जैसे भी हैं। जगह दीजिए उनको उनकी। उनकी वजह से दबाव नहीं महसूस कीजिए कि परेशान हो रहे हैं कि ये क्यों बार–बार आता है विचार मुझे। उसको पोषण मत दीजिए बस वो पल नहीं पाएगा और अपनी मौत मर जाएगा।

5. **हर बात पर प्रतिक्रिया जरूरी नहीं**– हर क्रिया दुनिया में आपके लिए नहीं हो रही है कि प्रतिक्रिया का प्रेशर बना लें और फिर उससे उपजे वाद–विवाद में उलझकर खुद को टॉर्चर करें।

6. **गलत लोगों को, चीजों को एनर्जी देना बंद कीजिए**– आप जब किसी को किसी भी तरह की एनर्जी देते हैं तब वो मल्टीप्लाई होकर आपसे वापस टकराती है। जैसे सुनिए, स्प्रिंग का क्या नेचर होता है! आप उसको जितनी स्पीड से दबाएँगे वो उतना ऊपर उछलेगा यानी कि जितना आपने प्रेशर दिया उसका दुगुना उसने आपको दे दिया। तो आपको बुरे लोगों खासकर जिनसे आपको नकारात्मक एनर्जी मिलती है, को अपनी एनर्जी बिल्कुल नहीं देनी है वरना फिर डबल होकर आती एनर्जी के लिए भी तैयार रहिए। अपनी एनर्जी उन लोगों और ऑब्जेक्ट्स को दीजिए, अपना स्प्रिंग उनको बनाइए जिनसे सकारात्मक एनर्जी मिलती हो। फिर वही बात चुनाव की है। चुनाव की वर्ड है इसको समझिए। देश चलता है इससे आप नहीं चलेंगे क्या।

7. **लाइफ मतलब डील करना**– जिंदगी ना तो फूलों की सेज है और ना कोई स्टेट ना कोई खास स्टेज ना ही कोई फेज। ये एक सतत प्रक्रिया है जिसमें सबसे इम्पोर्टेन्ट लर्निंग बाय डूइंग (करके सीखना) प्रोसेस है और कलेक्शन और बंच ऑफ एक्टिविटीज है। सबका अपना पैकेज है सबका अपना पैकेट है। सबका अपना स्ट्रगल है जिसमें आप सहयोग तो कर सकते हैं लेकिन उसका किरदार तो उसी को निभाना है।

8.. आदर्शवादी मत बनिए, यथार्थवादी बनिए। तकलीफें कम होंगी।

9. अवसाद है तो खुलकर स्वीकार कीजिए कि हाँ तनाव में हूँ। संवेग आधारित तकनीकों से समस्या नहीं सुलझेगी, समस्या, समाधान आधारित तकनीकों से सुलझेगी। दवाओं तक जाने से पहले के आसान रास्तों पर चलिए।

देखिए, मैं कोई मोटिवेशनल गुरु नहीं हूँ और ना ही मेरा ऐसा कोई आग्रह रहता है। ना मैं दवाओं से डील करती हूँ ना कोई गुरु ज्ञान देती हूँ। मैं स्पष्टवादी और यथार्थवादी हूँ।

एक तो जज बनना आज से अभी से बंद कर दीजिए। ये मानवता में आपका बहुत बड़ा योगदान होगा। अगर जज बनना ही है तो एग्जाम पास करके बन जाइए, तनख्वाह भी मिलेगी और फिजूल के निर्णय देने से भी बचेंगे।

परिस्थितियों के साथ डील करने का कोई इंजेक्शन नहीं आता है कि मैं लगा दूँ और आप चार्ज हो जाएँ। नहीं, ऐसा कुछ नहीं है दुनिया में। ना ही में परेशान आदमी को नींद की दवाओं में मरता हुआ देख सकती हूँ। प्लीज खुद को टॉर्चर करना बंद कर दीजिए। पाँच हजार दोस्तों (आपके अनुसार) में से कोई एक भी ढूँढ लेंगे जो आपकी बात सुनता हो आपको कन्धा देकर सहलाता हो, तो बहुत खुशी होगी मुझे। साथ दीजिए, ज्ञान सबके पास ओवर फ्लो हो रखा है।

पूरी दुनिया को बदलने की चाहत और 'चार लोगों' को खुश करने की हसरत पर ताला लगाकर चाभी किसी नदी में फेंक आइए और खुद पर काम कर कीजिए। पूरी धरती पर कारपेट नहीं बिछता, अपने पैरों में अपनी साइज की चप्पल डाल लीजिए।

तीन चीजें दोहरा देती हूँ जिनको आदत बना लीजिए अनुशासन के साथय

बोल्ड बनिए
चुनाव कीजिए, फिल्टर लगाइए
प्रैक्टिस, प्रैक्टिस और प्रैक्टिस

एक बात याद रखिए, हमेशा कोई मसीहा आकर बचा लेगा, ऐसा नहीं होता। खुद को खुद बचाना पड़ता है। अगर कुछ कमाना ही है तो सुकून कमाइए, उससे बड़ी कोई लग्जरी नहीं है।

मैंने अपनी जिंदगी में दो चीजें कमाई हैं, वो है बोल्डनेस और आजादी। कोई मुझसे छीन नहीं सकता और ना ये बिकाऊ है, हाँ इसकी कीमत चुकानी होती है और वो तो सबको चुकानी है तभी तो मैंने कहा कि 'चुनाव' की वर्ड है।

और आपने!

किसी को ऐसे नहीं जाना चाहिए, वैसे नहीं जाना चाहिए जैसी बातें आप करते हैं। मैं आपसे पूछती हूँ कि आपके घर के किसी सदस्य को अवसाद है और आपको ये कैसे पता लगा! जवाब नहीं है आपके पास।

आत्महत्याओं का मनोविज्ञान मत समझिए लेकिन घर में तो नजर रखिए। बात तो कीजिए। बात कीजिए। बात कीजिए।

हर पाँच मिनट में होती आत्महत्या पर विचलन तो बनता है ना, किंतु मेंटल हेल्थ पर बात करना उससे भी जरूरी बनता है।

है ना!

भटकने न दें, हाथ थाम लें बचपन का

आजकल सिर्फ बड़ों में ही नहीं बल्कि बच्चों में भी अवसाद के लक्षण दिखने लगे हैं। 13 साल की अरुणा पढ़ने में अच्छी थी, कुछ दिनों से काफी गुमसुम रहने लगी थी। टीचर की शिकायत आने लगी कि क्लास में वो अब कोई जवाब नहीं देती, बहुत शांत–शांत सी हो गई है। बात–बात पर डर जाना, रोने लगना एवं चक्कर आकर कुछ देर अचेत हो जाना, जैसे लक्षण आने पर घर वाले इलाज के लिए लेकर आए। इलाज के दौरान उसके बताया कि उसके घर में एक रिश्तेदार उसके साथ गलत करने की कोशिश करते हैं, मां को बताना चाहा लेकिन डर से बता नहीं पाई। उसने कहा, उसे पता है कि मां उसे ही दोष देगी।

अब अनुपमा को ले लें, वो स्कूल नहीं जाना चाहती। पढ़ाई में भी उसका मन नहीं लगता, बात–बात पर चिड़चिड़ा जाती है। उससे बातचीत के दौरान उसने बताया कि वह देखने में सांवली है और उसके चेहरे पर दाग की वजह से बच्चे उसका मजाक उड़ाते हैं। भगवान ने मुझे अच्छा नहीं बनाया है, मैं जिंदगी में कुछ भी नहीं कर सकूंगी। मैं क्यूं पैदा हो गई, जैसे नकारात्मक विचार एवं हीन भावना की वजह से काफी तनाव में थी और हताश हो रही थी।

डॉ. बिन्दा सिंह

(प्रसिद्ध क्लीनिकल साइकोलॉजिस्ट)

इसी तरह साकेत (12) को पढ़ाई–लिखाई में मन नहीं लगता, हमेशा गुम–सुम सा रहने लगा तो उसने बताया कि वो पढ़ाई में अच्छा नहीं कर पाता है। सब उससे नाराज रहते हैं, कोई उससे प्यार नहीं करता। उसके घर में हमेशा मम्मी–पापा के बीच लड़ाई होती है। उसे डर लगता है कि कहीं मम्मी–पापा अलग तो नहीं हो जाएंगे। फिर वो कहां रहेगा। बच्चे बहुत ही संवेदनशील और कोमल ह्रदय के होते हैं। छोटी–छोटी बातों से घबरा जाते हैं। या तो वे शांत हो जाते हैं या फिर आक्रामक। प्यार की भाषा समझते हैं। अभिभावकों की डांट और फटकार का सीधा असर उनपर पड़ने लगता है। कुछ बच्चे काफी अंतर्मुखी स्वभाव के होते हैं, हर छोटी–बड़ी बात को दिल से लगा लेते हैं। बच्चों में बर्दाश्त करने की क्षमता भी दिनों–दिन कम होती जा रही है। माता–पिता ने फटकार लगाई या उनकी इच्छा को पूरा नहीं किया तो तुरंत ही खुद को खत्म करने या मर जाने की बात करने लगते हैं। किशोर होते बच्चों को अगर मोबाइल चलाने से मना किया जाए या दोस्तों से कम मिलने को कहा जाए तो वे मौत को गले लगाने की बात करने लगते हैं।

आखिर बच्चे ऐसा क्यों कर रहे हैं। इसे हल्के में न लें। देखें कहीं आपका बच्चा परेशान तो नहीं है! कहीं मानसिक बीमार तो नहीं आ रहा है!

वैसे भी प्रतियोगिता के इस युग में बच्चों पर स्कूल का दवाब, समाज का दवाब, माता–पिता की बच्चों से अत्यधिक अपेक्षाएं, खेल–कूद में बेहतर प्रदर्शन, होमवर्क और एक्स्ट्रा एक्टिविटी का दवाब बना रहता है। इन सबके अलावा पढ़ाई में भी 90 प्रतिशत लाने की अपेक्षा। माना कि पढ़ाई किसी भी बच्चे के लिए जरूरी है, पर पढ़ाई के नाम पर बच्चों को मशीन बना देना गलत है।

बच्चों में कामयाब न होने का डर, फेल हो जाने का डर इतना हावी हो जाता है कि वे अवसाद में आ जाते हैं। मां–बाप यह नहीं बताते कि फेल होना एक ठहराव है, अंत नहीं। अभाव से चीजों को एक नए तरीके से सीखने का मौका मिलता है। इसके अलावा

पारिवारिक माहौल, मां–बाप के झगड़े, किशोरों में खुद को लेकर हीन भावना, शारीरिक एवं मानसिक शोषण, शारीरिक हीनता और उपेक्षा भी उन्हें अवसाद की ओर ले जाते हैं। ऐसे में इन बच्चों के कोमल मन को समझना अत्यंत जरूरी हो जाता है, ताकि उनके बचपन को बचाया जा सके।

बात–बात पर चिड़चिड़ापन, भूख नहीं लगना, नींद नहीं आना, अकारण पेट दर्द, पैर दर्द, छोटी–छोटी बातों में रूठ जाना, लगातार उदास रहना, रोना, सुस्ती महसूस करना एवं लोगों से कट कर रहने जैसे लक्षण दिखाई दें, तो सतर्क हो जाएं, ये अवसाद की निशानी है। जरूरत से ज्यादा इनडोर गेम और वीडियो गेम भी उन्हें सुस्त बना देते हैं। पता नहीं आजकल किस दुनिया में खोने लगे हैं बच्चे, ना बचपन दिखता है, ना बच्चों सी मासूमियत। पर हम सबभी इसके लिए जिम्मेदार हैं। इसलिए हमें सतर्क होना और बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूक होना होगा।

अभिभावकों को खुद के वर्चुअल वर्ल्ड से निकलकर बच्चों को भी समय देना होगा। खासकर किशोर होते बच्चों को समझना होगा। बच्चों को सिर्फ नसीहत या अनुशासन की सीख देने के साथ–साथ खुद में भी सकारात्मकता और अनुशासन लाना जरूरी है। बच्चों के सामने आपसी झगड़े से बचें, वरना उनके अंदर डर, हीनभावना एवं असुरक्षा की भावना घर कर जाएगी। बच्चों के साथ बैठें, संवाद करें और ऐसे शब्दों से परहेज करें कि पढ़ोगे नहीं तो रोड पर जाओगे या पढ़ोगी नहीं तो कौन अच्छा लड़का तुमसे शादी करेगा? ऐसे शब्द उन्हें तोड़ देते हैं और वे खुद को असहाय एवं अकेला समझकर अवसाद में आकर खुदकुशी तक करने का फैसला ले लेते हैं।

खासकर अंतर्मुखी बच्चे किसी से अपनी बातों को शेयर नहीं कर पाते हैं और अंदर ही अंदर घुटते रहते हैं। सबके साथ रहकर भी वे अकेला महसूस करते हैं। अकेलेपन में नकारात्मक विचार उन्हें अवसाद की ओर ले जाता है।

अगर बच्चों में अवसाद के लक्षण दिखें तो तुरंत सतर्क हो जाएं और बाल विशेषज्ञ या मनोवैज्ञानिक से मिलें। वैसे तो–
मां–बाप खुद ही बच्चों के सबसे बेहतर डॉक्टर और शुभचिन्तक होते हैं, उनके मुकाबले दुनिया का कोई शख्स बच्चों का अपना नहीं हो सकता है।

बच्चों को अहसास दिलाएं कि आप हमेशा उनके साथ हैं। आपस में ऐसा विश्वास हो कि बच्चा अपने मन की पीड़ा जब चाहे खुलकर आपसे शेयर कर सके, ताकि आपका बच्चा शारीरिक और मानसिक रूप से इतना स्वस्थ हो कि हताशा और निराशा उसे छू भी न सकें।

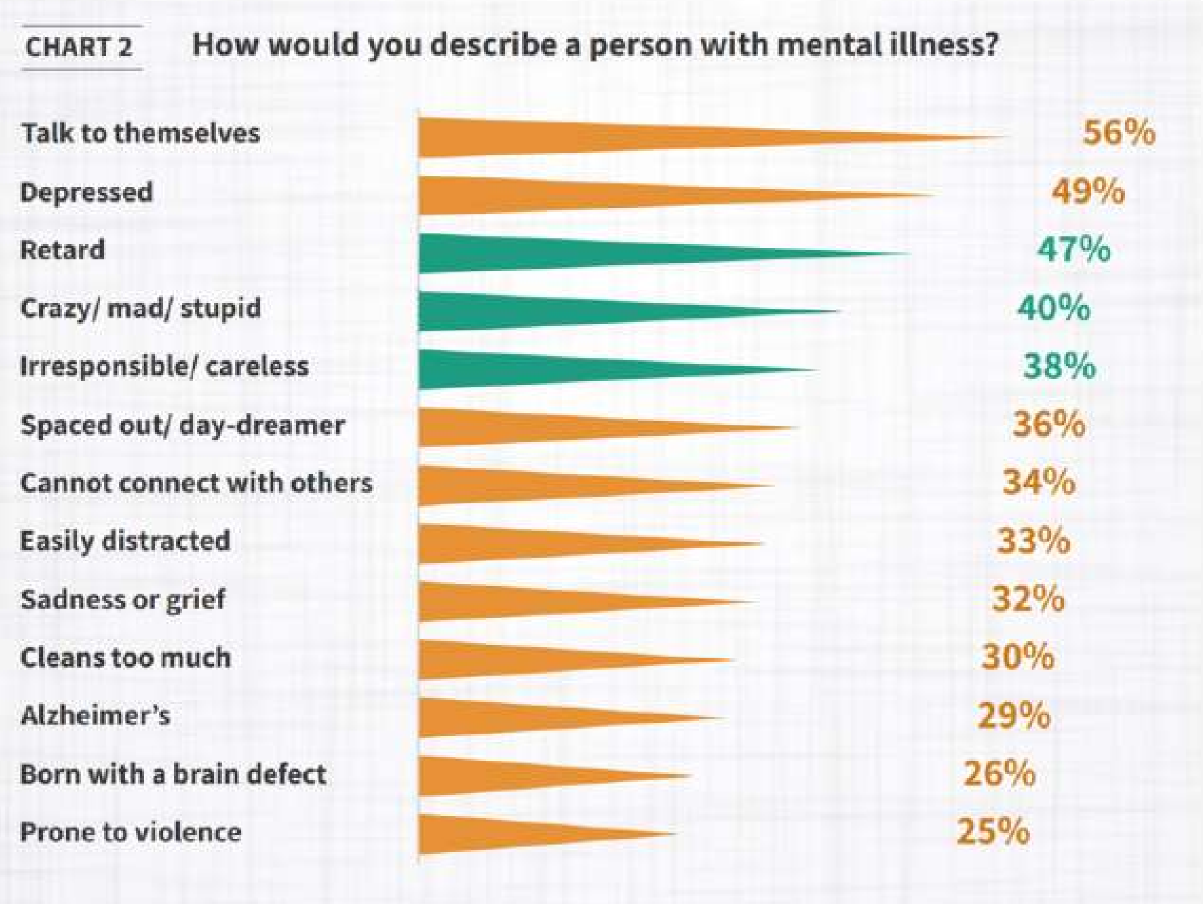

श्रोत: सर्वे टीएलएलएलएफ

"हां, मैंने अवसाद को हराया है"

शुभ्रता प्रकाश

(भारतीय राजस्व सेवा की अधिकारी व नीति आयोग में निदेशिका हैं तथा अवसाद विजेता हैं। वे बेस्टसेलिंग पुस्तक 'द डी–वर्ड: ए सरवाइवर्स गाइड टू डिप्रेशन' की लेखिका हैं)

बुद्धिमान। विजेता। स्मार्ट। रचनात्मक। प्रेरक।

ये वो कुछ शब्द हैं जिन्हें मैं अपने बारे में तबसे ही सुनती आई हूं जबसे मैंने संवादों को समझना शुरू किया था। खुश, हंसमुख, चुलबुली। "वो चलती नहीं है, छलांग लगाती है!" मेरे बड़े होने तक ये शब्द और वाक्य उस सूची में जुड़ते चले गए। और इस तरह मेरी खुद की छवि इन शब्दों से ही बनती गई।

"इस बच्ची का दिमाग इतना तेज है कि वो पानी में भी आग लगा दे!" ऐसा मेरे एक रिश्तेदार ने तब कहा था जब मैं 5 साल की थी। उस समय मुझे शायद ही मालूम था कि वो अत्यधिक तेज दिमाग अवसाद के धुंधले कुहासे में खो जाएगा, और मेरी पूरी जिंदगी नीरस, बुझी हुई आग बनकर रह जाएगी, और तब उस सूची में एक 'डी' शब्द भी जुड़ जाएगा।

मैं हूं शुभ्रता प्रकाश, भारतीय राजस्व सेवा की एक अधिकारी, एक जांबाज पुलिस अधिकारी की पत्नी और दो बेहतरीन बेटों की मां। मैं एक बेटी भी हूं जिसे इस बात का गर्व है कि वो जरूरत पड़ने पर अपने बुजुर्ग माता–पिता की सहायता करने में सक्षम है। और मेरा प्यारा सा परिवार आज मेरे जिंदा होने का एक ठोस कारण है, जिसने बार–बार करीब एक दशक से भी ज्यादा समय तक मेरे 'डिप्रेशन' को मात देने में मुझे संभाला है।

सिविल सर्विस क्यों?

बड़े होने तक मैंने बहुत कुछ बनने का सपना देखा था। स्कूल और कॉलेज में मैं अव्वल रही और फिर उसके बाद एमबीए किया। मेरी रचनात्मक भूख मुझे मार्केटिंग और एडवरटाइजिंग की दुनिया में लेकर गई। बहरहाल, मेरा दिल उसमें नहीं लगा और इसका पता मुझे बाद में लगा।

जब मैं बड़ी हो रही थी, मेरे गृह राज्य बिहार में, कोई भी बच्चा जो पढ़ाई–लिखाई में किसी भी तरह अच्छा होता था, उसे बस एक ही करियर के लिए नियत मान लिया जाता था– सिविल सर्विस। उस दुनिया में रहते हुए, मेरे पास कई योजनाएं थीं कि अगर मैं सिविल सर्विस में चली जाती हूं तो शासन में सुधार के लिए क्या–क्या कर सकती हूं। इसलिए, कुछ महीनों के बाद ही मैंने कॉरपोरेट जॉब को छोड़ दिया, घर गई और देश की एक सबसे कठिन परीक्षा की तैयारी में जुट गई।

2002 में, ऑल इंडिया 66वें रैंक के साथ मैंने आईआरएस की परीक्षा पास कर ली। तब तक मेरी शादी भी हो चुकी थी। मैंने अपनी ट्रेनिंग पूरी की, मेरी नियुक्ति आयकर सहायक आयुक्त के तौर पर हुई और उसके बाद मेरे और मेरे पति के जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ, जब हम माता–पिता बने।

मन का एक अनचाहा आगंतुक

इन सारी खुशियों के बीच, मेरे मन के भीतर, कहीं कुछ गलत होना शुरू हो चुका था। प्रसवोत्तर अवसाद के तौर पर जो शुरू हुआ था, वो धीरे–धीरे लेकिन लगातार बढ़ते हुए एक पूर्ण विकसित और गंभीर अवसादग्रस्त विकार (एमडीडी) में परिवर्तित हो गया था। अफसोस, मेरा परिवार और मैं, एक ऐसे गलत जानकारी वाले समाज का हिस्सा थे, जो यह मानता है कि अवसाद या गंभीर अवसाद–जैसा कि इसे

आम तौर पर जाना जाता है–का तात्पर्य उदासी है; उदासी जिससे कि पीड़ित कभी बाहर नहीं आ सकता है; बजाय इसके कि यह मस्तिष्क का एक विकार है जो किसी के विचार को प्रभावित करता है और उसके व्यवहार को पूरी तरह अपने नियंत्रण में ले लेता है।

अवसाद के साथ कई भ्रांतियां जुड़ी हुई हैं, जो इस गलत अवधारणा से उपजी हैं कि अवसाद वो चुनाव है जिसे 'कमजोर' लोग करते हैं। यह भ्रांति इतनी गहरी जुड़ी हुई है कि कई बार खुद पीड़ित भी अपने डायग्नोसिस को स्वीकार नहीं कर पाता है, इस भय से कि कहीं उसे 'मेंटल' न समझ लिया जाए, और इससे भी अधिक, कई बार तो स्वयं डॉक्टर किसी को यह सुझाव देने से कतराते हैं कि उसे एमडीडी हो सकता है। तो, पहली बार लक्षण सामने आने के करीब पांच साल के बाद 2011 में मुझमें औपचारिक तौर पर एमडीडी डायग्नोस किया गया। शुरुआती झटकों, और वही 'कमजोर–मजबूत–कि–मुझे–कैसे–अवसाद–हो–सकता–है?' वाले विचारों के बाद, मैं और मेरे पति ने पूरे विवेक से इस डायग्नोसिस को स्वीकार किया और इलाज के विकल्प की ओर बढ़ गए।

इलाज और ढलान

शुरु–शुरू में, उपचार में एंटी डिप्रेशन की दवाइयां और साइकोथेरेपी शामिल थीं। अगले 18 महीनों में, इलाज काम करने लगा और मैं एंटी डिप्रेशन की दवाइयों को बंद करने की स्थिति में आ गई। हालांकि, मैंने जिसे अंत समझा था, असल में वो मध्य ही था, और सबसे बुरा वक्त आना अभी बाकी था।

अगस्त 2012 में, एमडीडी का विशेष रूप से खतरनाक एपीसोड शुरू हो गया, जो 4 साल से अधिक समय तक बना रहा और जिसने अक्सर मुझे यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि क्या इस तरह से जीने का भी कोई मतलब था?

इन 4 वर्षों में, ज्यादातर समय मैं एंटी डिप्रेशन की दवाइयों पर निर्भर रही। दवा का प्रोटोकॉल लंबा खिंचता चला गया, क्योंकि दिमाग का धुंध कई बार नजर नहीं आता था, तो कई बार फिर से दिख जाता था। मैंने संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा यानी कॉग्निटिव बिहेवरियल थेरेपी (सीबीटी) भी लेना जारी रखा था। जब ऐसा लगा कि कुछ भी काम नहीं कर रहा है तब मैंने पूरक और वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों तक का रुख कर लिया।

एक समय ऐसा भी आया जब दवाइयों का साइड इफेक्ट इतना कमजोर करने वाला हो गया कि मुझे सभी एंटी डिप्रेशन दवाओं को छोड़ देना पड़ा।

उम्मीद की छोटी खिड़कियां!

दवाओं को छोड़ने के प्रभाव के कड़े संघर्ष, और गंभीर एमडीडी के अवशेषों के बाद, चीजें आसान होना शुरू हो गईं। सुधार सामान्य व्यवहार की बहुत छोटी सी खिड़कियों के रूप में होना शुरू हुआ जो बड़ी से बड़ी होती गईं और आज, एंटी डिप्रेशन दवाओं को बंद कर देने के करीब दो साल बाद, मैं फिर अच्छा महसूस करती हूं–वैसा ही जैसा मैं तब महसूस करती थी जब एमडीडी ने मेरे मन और दिमाग को अपने कब्जे में नहीं लिया था।

एमडीडी के सबसे गंभीर दौर में, मैं पूरे समय किताबें पढ़ती रहती थी और नेट सर्फिंग करती रहती थी, और समझने की कोशिश करती थी कि मुझे क्या हो रहा है और मैं कैसे खरगोश के उस बिल से निकल सकती हूं जिसमें मैं गिर चुकी थी।

मैंने न्यूरो साइंस के बारे में अनगिनत सामग्री देखी, एमडीडी के दौरान दिमाग में किस तरह के बदलाव होते हैं, कैसे डिप्रेशन कोई 'च्वाइस' नहीं, बल्कि दिमाग का विकार था, और कितने लोग जो बच गए, इसे अपने नियंत्रण में ले पाए।

मैं बचपन से ही लिखती रही हूं। और मेरी बीमारी के इस चरण में, मेरे परिवार और मेरे मनोचिकित्सक मुझे हमेशा लेखनी को गंभीरता से लेने के लिए प्रोत्साहित करते रहे, किसी भी और चीज की तुलना में इसे थेरेपी के एक स्वरूप के तौर पर लेने के लिए। मानसिक बीमारियों, तीखे सवालों और बेकार की सलाहों से पैदा होने वाली सामाजिक भ्रांतियों को पाते–पाते अंत में, मुझे लगा कि ये समय किताब लिखने का है, एमडीडी क्या है और मैं इससे सुरक्षित बच पाने में कैसे सक्षम रही।

और इस तरह, 'द डी–वर्ल्डः ए सरवाइवर्स गाइड टू डिप्रेशन' लिखी गई और प्रकाशित हुई।

यह किताब वास्तव में मेरे लिए एक उपचारात्मक अनुभव रहा–वास्तव में इसे लिखने और फिर प्रकाशन के बाद जो पहचान मिली, दोनों ही तरह से। हालांकि अपने जीवन के बारे में साफ–साफ कहना और उस बीमारी के बारे में बात करना कतई आसान नहीं था जिसे लोग बमुश्किल से स्वीकार कर पाते हैं। बहुत सारे लोग सलाह के लिए लिख रहे हैं या 'डी' के साथ जीने की अपनी कहानी को साझा कर रहे हैं।

मैं अपनी कहानी को विभिन्न मंचों पर भी साझा करने में सक्षम रही हूं, जैसे कि–वेबसाइट, पुस्तक कार्यक्रमों तथा यूनीसेफ और डब्ल्यूएचओ जैसी जगहों पर।

जब कोई मुझसे कहता है कि मेरी किताब ने उनकी या उनके प्रियजन की मदद की है तो मुझे अत्यधिक संतुष्टि मिलती है। हर बार जब कोई कहता है, ''इस किताब को लिखने के लिए धन्यवाद/अपनी कहानी को साझा करने के लिए धन्यवाद''–तो यह मेरी जिंदगी को सार्वजनिक परीक्षण के लिए खोल देता है जो कई बार किसी के लिए बहुत कीमती हो जाता है।

यहां तक कि, अभी और यहां, जब मैं एमडीडी के साथ अपनी लड़ाई के बारे में बात

कर रही हूं, मेरा मकसद मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक रोगों को चर्चा में लाना है।

मैं चाहती हूं कि पूरी दुनिया ये जाने कि मानसिक रोग न तो स्वेच्छा से किया गया कोई चुनाव है और न ही ये ऐसा कुछ है जिसपर शर्मिंदा हुआ जाए। मानसिक बीमारी साफ तौर पर मस्तिष्क में होने वाले बदलावों से जुड़ी हुई है, यद्यपि इसके सटीक कारण और कारण–परिणाम संबंध ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं है। मुझे पूरी उम्मीद है कि तकनीकी के विकास से, न्यूरोसाइंस रिसर्च और उन्नत तथा प्रभावी हो जाएगा और एक दिन हम न केवल यह जानने में सक्षम हो जाएंगे कि मानसिक बीमारी और एमडीडी जैसे व्यवहारात्मक विकार का कारण क्या है बल्कि हमारे पास इसका एक निश्चित इलाज भी मौजूद होगा।

मेरे लिए किसने काम किया, खैर, मैं यह बात फिर से कहती हूं, कि आज की तारीख तक, एमडीडी का कोई ज्ञात इलाज नहीं है–इस पशु के वध का कोई उपाय नहीं है। ऐसा इसलिए क्योंकि एमडीडी के निश्चित कारण का अब तक पता नहीं चल पाया है। दवाइयों, मनोचिकित्सा और पूरक चिकित्सा पद्धतियों के रूप में इलाज मौजूद है। मेरे मामले में, दवाइयों का असर प्रभावहीन रहा, और फिर यह नकारात्मकता की ओर चला गया (यह हर किसी के लिए सच नहीं हो सकता है; कृप्या अपनी दवाइयों को न छोड़ें, और न ही अपने मनोचिकित्सक की सलाह के बिना इसे किसी भी प्रकार से वैकल्पिक बनाने की सोचें)। हालांकि, सीबीटी जिंदगी बचाने वाला रहा। शारीरिक गतिविधियों, योग, तैराकी और अब हाल ही में दौड़ ने वास्तव में सहायता की। इसी तरह सचेतन ध्यान ने भी मदद की।

यदि आप, या आपके प्रियजन, अवसाद से जूझ रहे हैं, तो प्लीज उम्मीद न छोड़ें–अवसाद के पार जीवन है और वापसी संभव है। आपको हर उस चीज को आजमाते रहना होगा जो आपके लिए काम कर जाए।

कुंजी है जीना सीखना–हर दिन को वैसे ही लेना जैसा वो है–तब तक जब तक डिप्रेशन समाप्त नहीं हो जाता।

जब कभी मैं अस्तित्व के सवालों में उलझती और मेरा जीवन मुझे बदरंग लगने लगता, तो मैं अपने जीवन को अपने पति और प्यारे बच्चों की मुस्कान से जोड़ देती, और इसने कुछ सबसे बुरे दिनों में मुझे जिंदा रहने में सहायता की। तो आप भी अपने सहारे की तलाश कीजिए और भले ही आज यह मुश्किल लग रहा है, मगर आप धीरे–धीरे उसे ढूंढ लेंगे।

तो, अब, 'डी' शब्द के मेरी सूची में जुड़ जाने के बाद, 'लेखिका' भी इसमें जुड़ गया है। 'समर्पित' और 'आशावादी' भी कुछ और शब्द हैं। लेकिन क्या आपको पता है कि सबसे ज्यादा किक मुझे किससे मिलती है? 'विजेता'! ये वो शब्द है जिसने मेरे जीवन के इस दौर को परिभाषित किया है और मुझे ये कहने में वाकई गर्व महसूस होता है कि, आज, मैं विजेता से आगे बढ़कर विकसित हो चुकी हूं।

सर्वाधिक अवसादग्रस्त देशों में भारत सबसे आगे

Country	Total cases of depression	% of population suffering from depression disorders (prevalence)	Total cases of anxiety	% of population suffering from anxiety disorders
India	5.7 crore	4.5	3.8 crore	3
China	5.5 crore	4.2	—	—
Bangladesh	63.9 lakh	4.1	69 lakh	4.4
Indonesia	91.6 lakh	3.7	81.1 lakh	3.3
Myanmar	19.1 lakh	3.7	17.2 lakh	3.3
Sri Lanka	8 lakh	4.1	6.7 lakh	3.4
Thailand	28.8 lakh	4.4	22.7 lakh	3.5
Australia	13.1 lakh	5.9	15.5 lakh	7
Japan	50.6 lakh	4.2	36.8 lakh	3.1
Malaysia	11.2 lakh	3.8	14.6 lakh	4.9
Philippines	32.9 lakh	3.3	30.7 lakh	3.1

श्रोतः टाइम्स ऑफ इंडिया

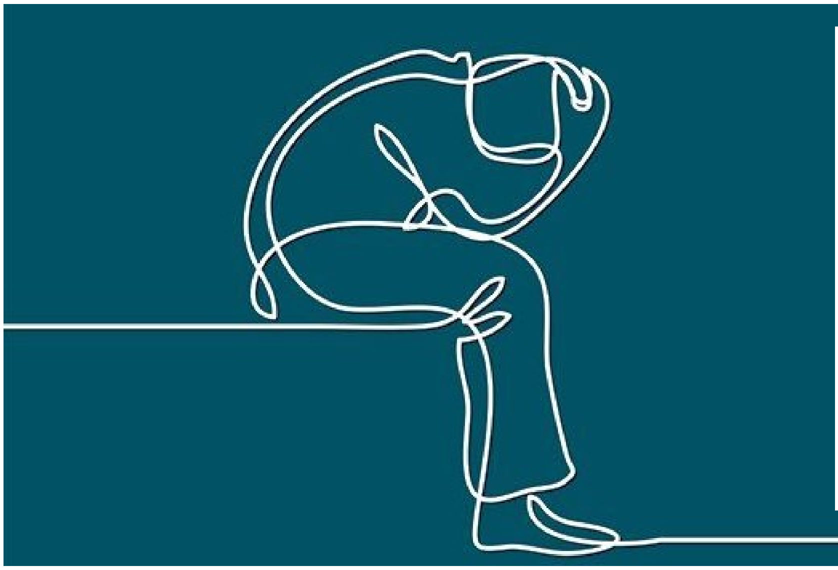

खुदकुशी से पहले बन जाएं दोस्त

''एनू कद्दी डिप्रेशन एई? सब कुछ तां है,'' कई पतियों की ये खिन्न प्रतिक्रिया होती है, जब मैं उन्हें बताता हूं कि उनकी पत्नी को क्लीनिकल डिप्रेशन है। और यही इस बीमारी को समझने में लोगों की जागरूकता की सबसे बड़ी बाधा है, बीमारी जो तनाव से हो सकती है, बढ़ सकती है या बदतर हो भी सकती है और नहीं भी।

क्लीनिकल डिप्रेशन अमीर से अमीर, सुव्यवस्थित और यहां तक कि आपके आस–पास रहने वाले सर्वाधिक खुश और सदैव पार्टी करते रहने वाले लोगों में भी हो सकता है। और उस समय दिमाग के काम करने की पद्धति पर बुद्धिजीवी ज्ञान भी कोई मदद नहीं कर पाता है। यही कारण है कि मानसिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता भी इसके उतने ही शिकार होते हैं जितने कि दूसरे लोग। यह आत्महत्या का कोई एकमात्र कारण नहीं है बल्कि यह सबसे आम कारण है। और इसका इलाज संभव है, आत्महत्या के ज्यादातर मामलों को रोका जा सकता है।

अक्सर क्लीनिकल डिप्रेशन के पीछे कोई पूर्ववर्ती तनाव नहीं होता है और कई बार एक छोटा सा ट्रिगर भी बड़ा कारण बन सकता है। कई बार, जिसे हम कारण समझते हैं वो आरंभिक अवसाद का परिणाम होता है। एक किशोरवय लड़का, जो हमेशा अच्छा विद्यार्थी होता था, फेल हो जाने के कारण अवसाद का शिकार नहीं हो गया बल्कि वो फेल ही इसलिए हुआ क्योंकि वो अवसाद का शिकार था। कोई व्यक्ति अपनी नौकरी चले जाने के कारण अवसाद में नहीं होता बल्कि वो अवसाद में था इसलिए उसकी नौकरी चली गई।

अक्सर कारण और परिणाम मिलकर बहुत पेचीदा हो जाते हैं जिन्हें आसानी से एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। क्लीनिकल डिप्रेशन के किसी भी मामले में इलाज एक ही है, यानी कि, डिप्रेशन और चारों ओर के तनाव का इलाज किया जाए, दवाइयों अथवा थेरेपी के साथ, या फिर दोनों के साथ। दोनों साथ मिलकर किसी भी अन्य की तुलना में बेहतर काम करते हैं।

चिड़चिड़ापन एक आम लेकिन कम महत्व वाला अवसाद है क्योंकि अवसाद को हमेशा आत्मघाती मान लिया जाता है। यहां निम्न स्तर की आक्रामकता के तुरंत बाद पश्चाताप की उत्पत्ति होती है। जैसे कि कोई युवा मां शोर मचाने पर अपने बच्चे को मारती है लेकिन उसके बाद अपने इस व्यवहार पर रोती भी है।

दोस्तों और परिवार द्वारा नेकनीयती से किए गए प्रयास कई बार अवसाद से गुजर रहे व्यक्ति के लिए दुख का कारण बन सकते हैं, बल्कि उसे बदतर भी बना सकते हैं।

खुश रहने और सकारात्मक रहने के लिए जरूरत से ज्यादा पीछे पड़े रहना प्रति–उत्पादक हो जाता है। मेरा मतलब है कि वो अब तक वैसा था, और अब भी ऐसा ही है। कोई भी अपनी खुशी से नकारात्मक महसूस नहीं करता है।

हैरान परिवार वाले उसे हमेशा टीवी के सामने बैठने या फिल्म देखने या शॉपिंग के

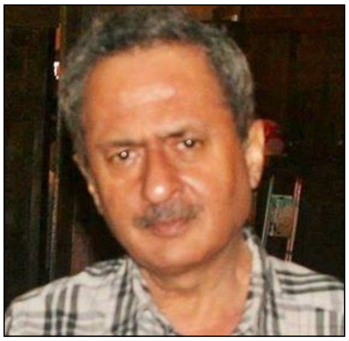

अनिरुद्ध काला

(प्रसिद्ध मनोचिकित्सक, 40 वर्षों तक इंडियन साइकिएट्रिक सोसायटी के सक्रिय सदस्य रहे, मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े वैधानिक उपायों के लिए लंबा संघर्ष किया)

लिए चलने के लिए मनाते रहते हैं। ऐसा करना उसे इस बात का अहसास कराता है कि वो खुश रहने में असमर्थ है। अवसादग्रस्त व्यक्ति के चारों ओर न तो हमेशा लोगों की भीड़ रहनी चाहिए और न ही उसे कभी नितांत अकेला छोड़ देना चाहिए। बस एक या दो करीबी लोगों का उसके पास रहना सबसे अच्छा है।

कई बार कोई व्यक्ति किसी नौकरी को बड़े प्रयासों के बाद पाता है। लेकिन अगर वो अवसाद में है, और चूंकि सुबह के समय अवसाद चरम पर होता है, इसलिए वो ऑफिस जाने से अनिच्छा जाहिर करता है। अब क्योंकि परिवार वाले अक्सर इस अवसाद को काम के तनाव से जोड़कर देखते हैं तो पत्नी उसे अपनी नौकरी से इस्तीफा देने के लिए कहती है ताकि उसके पति को अच्छा महसूस हो सके। उपचार के बाद जब वो व्यक्ति ठीक हो जाता है तो उसे अपने निर्णय पर पछतावा होता है और तब वो एक और बार इस दलदल में फंस जाता है। इसलिए ये स्वयंसिद्ध है कि, ''जब आप अवसाद में हों तब कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय न लें।''

उदासी किसी भी प्रतिकूल घटना के लिए एक सामान्य भावनात्मक प्रतिक्रिया है, एक ऐसी घटना जिसके बारे में व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता है। दुख किसी प्रियजन को खो देने के बाद की एक सामान्य प्रतिक्रिया है। सभी दुःख और उदासी निश्चित रूप से अवसाद नहीं हैं। यह केवल तभी हो सकता है जब उदासी लंबे समय तक बनी रहे। और निश्चित रूप से तब, जब बिना किसी तनाव के दुःख का सामना करना पड़े।

अवसाद बाल्यावस्था (बहुत कम) से लेकर वृद्धावस्था (कई बार) तक, किसी भी उम्र में हो सकता है। फिर भी, 30 से 50 साल की उम्र इसके लिए चरम अवस्था है, और इस उम्र में भी पुरुषों की तुलना में महिलाएं इसका दोगुना शिकार होती हैं। हाइपोथायरायडिज्म भी इस उम्र में महिलाओं में होने वाला एक विकार है, और दोनों अक्सर एक साथ होते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एक के कारण दूसरा होता ही है। फिर भी कम सक्रिय थायरॉयड का पता करना और फिर उसका इलाज करना बहुत महत्वपूर्ण है अन्यथा अवसादरोधी बेहतर तरीके से काम नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि मनोचिकित्सक, विशेष रूप से महिलाओं के मामले में, अक्सर थायरॉयड की जांच की सलाह देते हैं। आधुनिक अवसादरोधी दवाओं को यदि ठीक ढंग से लिया जाए तो इससे वजन नहीं बढ़ता है, लेकिन वे अक्सर यौन संबंधी दुष्प्रभाव पैदा कर सकते हैं, स्त्री और पुरुष दोनों ही में। इसके बारे में मनोचिकित्सक को बताना बहुत जरूरी है। अवसाद से उबरने की प्रक्रिया जीवन की गुणवत्ता की कीमत पर नहीं होनी चाहिए।

डिप्रेशन का इतिहास न होने पर मीनोपॉज डिप्रेशन आम तौर पर नहीं होता है और ये मिथ्या प्रचार से ज्यादा कुछ नहीं है। ज्यादातर औरतों को इस दौरान अवसाद नहीं होता है, यहां तक कि अत्यधिक भावुक महिलाओं को भी नहीं। रिटायरमेंट के बाद का अवसाद मुख्य तौर पर शिथिलता के कारण होता है जो पुरुषों में आम है; औरतों को उसके बाद भी घर में करने के लिए बहुत काम होते हैं।

आम तौर पर क्लीनिकल डिप्रेशन एक एपिसोडिक बीमारी है जो पूरे जीवन में या तो एक बार होता है या फिर पूरी तरह से ठीक हो जाने के बीच के वर्षों में कई बार हो सकता है। हर एपिसोड का इलाज अच्छे से हो सकता है। कई बार, यह अपने आप ही ठीक भी हो जाता है, लेकिन किसी भी व्यक्ति के बारे में यह बताने का कोई तरीका नहीं है कि ऐसा कब और कहां होगा—इसलिए हर एपिसोड का इलाज कराया जाना बहुत जरूरी है।

अवसाद कई सालों तक निम्न स्तर में मौजूद रह सकता है, जिसे डिस्थिमिया कहा जाता है जिसमें व्यक्ति काम तो करता है लेकिन बेहद सुस्ती और शिथिलता के साथ। आपको अपने मनोचिकित्सक से पूछना चाहिए कि आप किस तरह के अवसाद के शिकार हैं। अवसाद में अक्सर चिंता, अनिष्ट की आशंका, कंपकंपी और घबराहट बनी रहती है। लेकिन मुख्य तौर पर, इसके लक्षणों में, अनपेक्षित ढंग से उदास रहना अथवा भावनाओं का खत्म हो जाना, दुखी रहना और काम या समाज के प्रति विमुख रहना शामिल हैं। नींद अक्सर कम हो जाती है, लेकिन कभी–कभी बहुत बढ़ जाती है। भूख भी कम या अधिक हो सकती है। शारीरिक लक्षण बहुत सामान्य हैं; सिर भारी लगना, अपच, दर्द और पीड़ा, और यही कारण है कि ज्यादातर लोग सबसे पहले किसी फिजीशियन के पास जाते हैं।

नकारात्मक विचार (ये ना हो जाए, वो ना हो जाए), अपराध बोध (मैं ये नहीं कर सकती, जबकि वो ऐसा करती रही है), आगे चलकर आत्महत्या के विचार (क्यों न सब खत्म कर दिया जाए), इलाज नहीं किए जाने वाले मामलों में हावी होने लगते हैं।

हममें से सभी लोगों के मन में कभी न कभी आत्महत्या करने का विचार आता ही है, कई बार तो केवल आकर्षण के कारण। अवसादग्रस्त मरीज इसे गंभीरता से करते हैं, कभी तो इसलिए कि उन्हें कोई मदद नहीं मिल पाती है और कभी इसलिए कि उन्हें इस बात का भरोसा हो जाता है कि यह दुनिया बेहद दुखी और नीरस स्थान है और यह हमेशा ऐसी ही रहेगी। दूसरी वाली सोच ही वह चालक है जो एक मां के मन में अपने बच्चों के साथ आत्महत्या के विचार पैदा करती है।

मनोदशा

महिलाएं और अवसाद

महिलाओं में पुरुषों की तुलना में ज्यादा पायी जाने वाली मानसिक बीमरियों में अवसाद का स्थान सर्वोपरि है। महिलाओं में अवसाद नामक बीमारी की दर पुरुषों की तुलना में दुगुनी होती है और ऐसा दुनिया के हर देश और समाज में देखा गया है। न सिर्फ यह दुगुनी होती है बल्कि महिलाओं में इसके लक्षण ज्यादा गम्भीर हो सकते हैं तथा यह ज्यादा समय तक कायम भी रह सकता है। इसी कारण मानसिक रोगों के कारण उत्पन्न सकल अक्षमता या दिव्यांगता में अवसाद नामक बीमारी का योगदान महिलाओं में लगभग 40 प्रतिशत, किन्तु पुरुषों में मात्र 30 प्रतिशत होता है।

डा. प्रमोद कुमार सिंह

(प्रसिद्ध मनोचिकित्सक तथा विभागाध्यक्षए मनोचिकित्सा विभाग, पीएमसीएच)

मानसिक स्वास्थ्य मनुष्य के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयाम है। यद्यपि कि इस बात की अनुभूति हम में से अधिकांश को नहीं होती है। नहीं होती है इसलिए क्योंकि मन अपनी अगोचरता के कारण, स्थूल शरीर एवं बाह्य–जगत की तरह, इन्द्रियों के माध्यम से अपनी उपस्थिति प्रकट नहीं करता। वह एक आभासी अनुभूति के रूप में इन्द्रियातीत स्तर पर हमसे जुड़ा रहता है। मन से ही हमें अपने अस्तित्व का आभास होता है तथा मन से ही अपने शरीर और बाह्य जगत का ज्ञान भी होता है। मन से ही सुख है तथा मन से ही दुख है तथा मन के हारे हार है, मन के जीते जीत– जैसी अवधारणाएं हमारी संस्कृति और समाज में रची–बसी है। मानसिक आयाम ही मनुष्य की मूल पहचान है, इसलिए मानसिक स्वास्थ्य पर सतत विचार एवं उसकी मीमांसा बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य वस्तुतः स्वास्थ्य के अन्य सभी आयामों, यथा शारीरिक–सामाजिक–आध्यात्मिक स्वास्थ्य, की जननी और मुख्य धारक है। महिलाओं के संदर्भ में जब मानसिक स्वास्थ्य की बात की जाती है तो यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि महिलाएं न सिर्फ समस्त मानव जाति की जननी है, बल्कि पूरे परिवार और समाज के मानसिक स्वास्थ्य की भी जननी और नियामक मानी जा सकती है। किसी भी समाज की संस्कृति एवं उसकी परम्पराओं के निर्वहन एवं अग्रप्रेषण में भी उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

समाज में महिलायें

महिलाएं, प्राकृतिक रूप से, समस्त मानव जाति की अविभाज्य अर्धस्वामिनी हैं। स्त्री और पुरुष के अस्तित्व का परस्पर सम्पूरक के रूप में प्रकृति में अभिव्यक्त होना एक नैसर्गिक व्यवस्था है। इस व्यवस्था का हमें सामाजिक, आर्थिक एवं वैधानिक स्तर पर सम्मान करना चाहिये। दोनों में से प्रत्येक अपने आप में अधूरा है। शारीरिक स्तर पर प्रकट उनकी आभासी संपूर्णता में यह अधूरापन छिप जाता है। स्त्री और पुरुष की समीपता में ही उनकी संपूर्णता निहित है। स्त्री और पुरूष को एक–दूसरे का विरोधी, प्रतिरोधी या प्रतिद्वंद्वी रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिये, जैसा कि अक्सर किया जाता है। इससे पूरे समाज की कुल शक्तियों की हानि होती है, सौहार्द्र एवं समरसता में कमी आती है, तनाव बढ़ता है, संबंधों में टूट पैदा होती है, अकेलापन बढ़ता है और अपनेपन का दायरा संकुचित होता चला जाता है। मानसिक विकारों के पनपने का इससे अच्छा और क्या परिवेश हो सकता है। इसलिए समाज की यह नैतिक और वैधानिक जिम्मेदारी बनती है कि वह ऐसी व्यवस्थाएँ पैदा करे कि लैंगिक आधार पर कोई असमानता, अनादर, विद्वेष, हिंसा या शोषण–दोहन की स्थितियाँ न तो पैदा हों और न ही कायम रहें। इन सबका व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत गहरा असर पड़ता है। अतीत से उबर कर अपनी आधी आबादी की विमुक्ति और विकास के लिये पूरे समाज को बड़ी सक्रियता से बढ़कर आगे आना चाहिए।

महिलाओं में मनोविकार

वैसे तो महिलाओं में भी वे सभी मनोविकार पाए जाते हैं जो पुरुषों में देखे जाते हैं किंतु फिर भी कुछ प्रकार के मनोविकार महिलाओं में तुलनात्मक रूप से ज्यादा सँख्या में पायी जाती हैं। वैसे सकल और सभी प्रकार के मानसिक रोगों की अगर एक साथ बात करें तो पुरूषों की तुलना में महिलाओं में यह कुछ अधिक प्रतिशत में पाया जाता है। महिलाओं में पुरुषों की तुलना में ज्यादा पायी जाने वाली मानसिक बीमारियों में अवसाद का स्थान सर्वोपरि है। महिलाओं में अवसाद नामक बीमारी की दर पुरुषों की तुलना में दुगनी होती है और ऐसा दुनिया के हर देश और समाज में देखा गया है। न सिर्फ यह दुगनी होती है बल्कि महिलाओं में इसके लक्षण ज्यादा गम्भीर हो सकते हैं तथा यह ज्यादा समय तक कायम भी रह सकता है। इसी कारण मानसिक रोगों के कारण उत्पन्न सकल अक्षमता या दिव्यांगता में अवसाद नामक बीमारी का योगदान महिलाओं में लगभग 40 प्रतिशत, किन्तु पुरुषों में मात्र 30 प्रतिशत होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अवसाद यानी डिप्रेशन का स्थान, मनुष्य को आक्रान्त करने वाली सभी प्रकार की बीमा. रियों से जनित निशक्तता की सूची में, 2020 तक दूसरे स्थान पर और

2030 तक पहले स्थान तक पहुँच जाने की संभावना है। अवसाद के अलावा अन्य प्रकार की मानसिक बीमारियां जो महिलाओं में ज्यादा देखी जाती है, वे हैं Anxiety Disorder, Panic Disorder, Phobias, Somatoform Disorder और PTSD. जबकि दो अन्य प्रकार के गम्भीर मानसिक रोग, Shizophrenia और Bipolar Disorder पुरुषों एवं स्त्रियों में समान रूप से पाये जाते हैं। इसलिए मानसिक रोग के संदर्भ में, पुरुष एवं महिलाओं में देखे जाने वाले अंतर के कारणों को समझना बहुत आवश्यक है ताकि प्रतिकार के आवश्यक उपाय किये जा सकें।

अवसाद के लक्षण

अवसाद एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसे तकनीकी भाषा में डिप्रेशन या Depressive Disorder कहा जाता है। इसका मुख्य लक्षण उदासी है, किन्तु यह हर–दिन अनुभव की जाने वाली सामान्य उदासी से अलग होता है। सामान्य उदासी, हर दिन घटित हो रहे जीवन के घटना क्रम के संदर्भ में महसूस किया जाने वाला एक भाव है, जो एक तरंग की तरह आती है तथा परिवेश और परिस्थितियों के बदलते ही चली जाती है। जबकि अवसाद की उदासी बड़ी गहरी होती है, उसमें एक जड़ता होती है, जिसके साथ आनंद का अनुभव नहीं कर पाने की अक्षमता भी जुड़ी होती है। परिवेश और परिस्थितियों के बदलने से उस भाव पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। साथ ही ऊर्जा के अभाव और सुस्ती का भी अनुभव होता है। किसी काम में मन नहीं लगता, हर काम भारी और दुरूह लगता है। व्यक्तिगत देख–रेख तथा साफ–सफाई में भी कमी आ जाती है। व्यक्ति अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों पर ध्यान नही दे पाता है। मन निराशा, अवमानना, ग्लानि और असहायता जैसे भावों से भर जाता है। जीवन अर्थहीन महसूस होने लगता है तथा कई बार आत्महत्या के विचार विभिन्न तीव्रता के साथ घुमड़ने लगते हैं। आत्महत्या के सबसे प्रमुख कारणों में से एक अवसाद ही है। उपरोक्त लक्षणों के साथ–साथ व्यक्ति की नींद, भूख एवं अन्य शारीरिक आवेगों में भी कमी आ जाती है। लेकिन संतोष की बात यह है कि अवसाद का उपचार किया जा सकता है जो कि सामान्यतया काफी सरल, सहज और सुलभ भी है।

मनोविकार के कारक

वैसे तो मानसिक रोगों के अनगिनत कारण हैं, जिन्हें आनुवंशिक, अन्य दैहिक, नशा–सेवन, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक–श्रेणियों में रखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त, एक नजर उन कारकों पर डालना प्रासंगिक होगा जो स्त्रियों में सामान्य से अधिक तनाव पैदा करने तथा मानसिक रोग सुगम करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी मानी जा सकती हैं। सबसे पहला कारक है स्त्रियों की अपनी नैसर्गिक जैविक बनावट। मासिक धर्म, गर्भधारण तथा रजोनिवृत्ति के क्रम में शरीर के अन्दर पैदा हुए अन्तःस्रावी हलचल का प्रभाव मनोमस्तिष्क तथा मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों की वर्तमान सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां, पुरुष प्रधान समाज में, कई बार विशेष तनाव पैदा करने का कारण बन जाती हैं। सामाजिक–आर्थिक अधिकारों और स्वतन्त्रता में असमानता, स्त्रियों में पराश्रित एवं असहाय होने का भाव पैदा करता है, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य दुष्प्रभावित होता है। अपने और अपने जीवन के बारे में भी निर्णय लेने में वे अपने आप को अक्षम पाती हैं, जिससे तनाव पैदा होता है। लंबे तनाव की परिणति मानसिक रोग के रूप में प्रकट होती है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि स्त्रियों के संदर्भ में इलाज या तो करवाया नहीं जाता है या देर से करवाया जाता है, और फिर या तो अधूरा ही करवाया जाता है। इन कारणों से उन्हें अधिक पीड़ा एवं दीर्घकालिक कष्ट भोगना पड़ता है। मानसिक रोग के कारण स्टिग्मा या कलंक का दंश भी उन्हें पुरुषों की तुलना में ज्यादा झेलना पड़ता है। वर्तमान आधुनिक समय में घर और बाहर, दोनों जगह अपना पाँव पसारने के कारण, स्त्रियों को ज्यादा जिम्मेदारियों का बोझ सम्हालना पड़ रहा है। पालन पोषण एवं परिजनों की सुश्रुषा की पारम्परिक जिम्मेदारियों के साथ–साथ कार्यालय एवं कार्यस्थलों की अपेक्षायें एवं तनाव भी जुड़ जाती हैं। इन विस्तारित हो रहे प्रतिकूल प्रभावों के कारण महिलाओं के मानसिक रोगों से आक्रान्त होने की संभावना बढ़ जाती है।

प्रभावी उपाय

महिलाओं से जुड़ी सभी समस्यायें हमारी अपनी समस्या हैं। यह हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है कि हम उन समस्याओं के प्रतिकारी उपाय खोजें तथा उसका निराकरण करें। पुरुष और स्त्री दोनों की यह जिम्मेदारी है, पूरे समाज की जिम्मेदारी है। सबसे पहला कदम तो यह होना चाहिये कि स्त्री और पुरुष को एक दूसरे के विरोधी या प्रतिस्पर्धी के रूप में न तो दर्शाना चाहिये और न ही उस रूप में सोचना या व्यवहार करना चाहिए। दोनों ही, पुरुष एवं स्त्री, प्रकृति–प्रदत्त उपहार हैं, जिनका उद्गम ही एक–दूसरे के सहयोग एवं सान्निध्य से अपनी प्रजाति को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से हुआ–होता प्रतीत होता है। वे एक दूसरे के सम्पूरक है, और यही भाव उनके सभी आपसी रिश्ते में परिलक्षित होना चाहिये। बराबरी का मतलब बैर नहीं, वरन पारस्परिकता होनी चाहिये। सद्भाव को सुरक्षित रखते हुए, स्त्रियों के सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के यथोचित उपाय, तो किये ही जाने चाहिए। उनकी शिक्षा, सुरक्षा, रोजगार, व्यवसाय, सामाजिक एवं राजनैतिक सत्ता में भागीदारी, इत्यादि जैसे अन्यान्य सशक्तिकरण के उपाय समाज के द्वारा प्राथमिकता के आधार पर स्वतः पहल लेकर किया जाना चाहिये। इन सारे सशक्तिकरण के साथ यह मानसिकता और संस्कृति भी जुड़ी होनी चाहिये कि इनका उद्देश्य किसी संग्राम के लिए सामर्थ्य हासिल करना नहीं है, वरन जीवन यात्रा में एक दूसरे का हाथ थामकर उसकी संपुर्णता और सफलता की ओर बढ़ने में परस्पर सहायक सिद्ध होना है। पुरुष पुरुषत्व की ओर बढ़ें, स्त्रियाँ अपने स्त्रीत्व को सुदृढ़ करें और दोनों मिलकर एक मजबूत द्वैत–इकाई के रूप में अपने समाज और परिवार को अपनी सेवायें समर्पित करें। पुरुष स्त्रियों के प्रति समर्पित हों तथा स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति समर्पित रहें, एक दूसरे की सुरक्षा, सेवा और सहयोग में योगदान करें। इसी में सभी का कल्याण है।

युवा

बच्चे और युवा भी मनोरोग की चपेट में

सबसे आगे रहने, सबसे ज्यादा हासिल करने या सबसे ताकतवर होने की भावना ने अवसाद और अवसाद से उपजी आत्महत्या की भावना को सामान्य व्यवहार बनाना शुरू कर दिया है।

भारत में राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (National Crime Record Bureau) के वर्ष 2001 से 2019 तक की रिपोर्ट्स से पता चलता है कि इस अवधि में 44842 बच्चों और किशोरों ने परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने के कारण आत्महत्या कर ली। किस हद तक अवसाद और आत्मघात की भावना का विस्तार हो चुका है, इसका अनुमान लगा पाना भी अब संभव नहीं लगता।

भोपाल में दूसरी कक्षा में पढ़ने वाली 9 साल की बच्ची राधिका ने इसलिए फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली क्योंकि वह पालतू खरगोश को छत से कमरे में लाना चाहती थी और उसकी मां ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। नई सामा. जिक–आर्थिक पारिस्थिति में बच्चों के मनोविज्ञान को समझने में हमारी सरकारें और समाज दोनों नाकाम रहे हैं।

सचिन कुमार जैन

(सामाजिक शोधकर्ता तथा निदेशक, विकास संवाद। दक्षिण एशिया लाडली मीडिया पुरस्कार और संस्कृति पुरस्कार से सम्मानित)

हम सैद्धांतिक रूप से तो यह तर्क देते हैं कि बच्चों के साथ संवाद होना चाहिए, उन्हें अपनी बात कहने का पूरा अवसर मिलना चाहिए किन्तु जिस तरह का आर्थिक विकास का ताना–बाना हमने अपनाया है, उसके कारण यदि परिवार में बच्चों के माता–पिता के सामने रोजगार, कर्ज या विस्थापन का संकट सदैव मौजूद है, अनुसूचित जाति के व्यक्तियों के साथ छुआछूत हो रही है, लैंगिक प्रताड़ना जारी है, तो जरा सोचिये कि परिवार में कोई भी सदस्य बच्चों के साथ हमेशा 'सहज और सहभागितापूर्ण' व्यवहार कैसे कर सकता है? जिस तरह की शिक्षा व्यवस्था को भारत ने अपनाया है, उसका स्वाभाविक परिणाम बच्चों में हिंसा और कटु–प्रतिस्पर्धा की भावना के विकास के रूप में सामने ही आएगा।

इंडियन जर्नल आफ साईकैट्री में प्रकाशित शोध पत्र (इम्प्रूविंग चाइल्ड एंड एडोलोसेंट मेंटल हेल्थ इन इंडिया द स्टेटस, सर्विसेस, पॉलिसीज एंड वे फॉरवर्ड) के मुताबिक भारत में बच्चों और किशोरवय जनसंख्या लगभग 43.4 करोड़ है। आमतौर पर इस उम्र से सम्बंधित विषयों के रूप में ज्यादातर टीकाकरण, शारीरिक स्वास्थ्य सेवाओं और स्कूली शिक्षा के बारे में चर्चा होती है, किन्तु वास्तविकता यह है कि विभिन्न कारणों (शिक्षा, प्रतिस्पर्धा, शारीरिक–मानसिक बदलाव, हारमा. `न परिवर्तन, अभिव्यक्ति के कम मौके आदि) से 19 साल तक का आयुवर्ग गंभीर मनोरोगों की चपेट में आ चुका है। इस शोध पर्चे के मुताबिक 5 करोड़ बच्चे मनोरोगों से ग्रसित हैं, जबकि 12.5 प्रतिशत से 16.5 प्रतिशत किशोरवय मनोरोगों की चपेट में आ चुके हैं। भारत में 13 से 17 साल की उम्र के 98 लाख लोग मनोरोगों से प्रभावित हैं।

किशोर अवस्था में आत्महत्याएं

एक खास सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि सबसे आगे रहने, सबसे ज्यादा हासिल करने या सबसे ताकतवर होने की भावना ने अवसाद और अवसाद से उपजी आत्महत्या की भावना को सामान्य व्यवहार बनाना शुरू कर दिया है। एक तरफ तो पूरी दुनिया में कोविड 19 महामारी का फैलाव हुआ पड़ा है, समाज और सरकार इससे निपटने की जुगत में हैं। सबको पता है कि आने वाले वक्त में दुनिया का रूप–स्वरुप–स्वभाव बदलेगा, किन्तु फिर भी बच्चे–छात्र–छात्राएं अपने परीक्षा के परिणामों से इतने डरे हुए हैं कि कोविड 19 का भय भी उनके अनुत्तीर्ण होने के भय के सामने छोटा पड़ गया।

केरल को देश–दुनिया में सराहा गया क्योंकि राज्य ने कोविड 19 को नियंत्रित करने के लिए बेहतर काम किया, लेकिन इन्हीं 100 दिनों में केरल में 66 बच्चों ने आत्महत्या कर ली। वालनच. `री (केरल) में 14 साल की देविका बालचंद्रन ने इसलिए खुदकुशी कर ली क्योंकि उसके परिवार के पास स्मार्टफोन या स्मार्ट टेलीविजन नहीं था। इसके कारण वह ऑनलाइन कक्षाएं हासिल नहीं कर पा रही थी।

भारत में राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो के वर्ष 2001 से 2019 तक के प्रतिवेदनों का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस अवधि में 44842 बच्चों और किशोरों ने परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने के कारण आत्महत्या कर ली। हमारी भेदभाव से भरपूर असमान शिक्षा प्रणाली पर क्यों विचार नहीं होना चाहिए, जो हजारों बच्चों को आत्महत्या का प्रमाणपत्र हासिल करने के लिए बाध्य करती हो। वर्ष 2001 में विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या के 5474 मामले दर्ज हुए थे, जो वर्ष 2019 में लगभग दोगुने बढ़कर 10335 हो गए। शायद आप जानते हों कि राजस्थान के शहर कोटा को प्रतियोगी व्यावसायिक परीक्षाओं की तैयारी के लिए कोचिंग संस्थानों का गढ़ माना जाता है, लेकिन पिछले एक दशक में यह छात्र–छात्राओं की आत्महत्या का गढ़ बन गया। हम प्रतियोगिता के उस भावनात्मक मुकाम तक पंहुच गए हैं, जहां दबाव अपने चरम पर है। किसी भी कीमत पर 'सफलता' चाहिए। यदि असफलता का कोई भी संकेत मिले तो युवा आत्महत्या करने से नहीं चूकते हैं। आज शायद वे खुद को खत्म कर रहे हैं, लेकिन यह तय है कि दबाव के अगले चरण में वे हत्याएं करने का विचार विक. सित करेंगे। हम बच्चों और युवाओं के मन को पढ़ ही नहीं पा रहे हैं।

उनके मन पर हमने यानी नए विकास के राजदूतों ने कब्जा जमा लिया है। उन्हें प्रतिस्पर्धा के लिए इस हद तक सम्मोहित कर दिया गया है कि वे आत्मघाती दस्ते के रूप में तैयार हो रहे हैं।

जिस तरह की प्रतिस्पर्धा हमने शिक्षा व्यवस्था में डाली है, वह आखिर में 'फांसी का फन्दा या जहर' ही पैदा करती है। हमारे यानी आम लोगों के मन में यह सवाल क्यों नहीं खड़ा होता है कि शिक्षा जीवन का निर्माण करने वाली होना चाहिए या जीवन को खत्म करने वाली! बात अब केवल उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होने तक ही सीमित नहीं है। अब बच्चे हांके जाते हैं 100 फीसदी अंकों की तरफ, अगर जीवन में कुछ बनना है तो 100 फीसदी अंक चाहिए। जीवन में कुछ बनने की परिभाषा क्या है? डाक्टर, इंजीनियर, महाप्रबंधक या फिर अच्छा खिलाड़ी, कवि, साहित्यकार, चित्रकार भी इसमें शामिल हैं। बेहतर जीवन या बेहतर व्यापार का मतलब है खूब मुद्रा यानी धन हासिल करना। इस धन को हासिल करने के लिए हम अपने संसाधन यानी अपने इंसान होने के स्थिति को बलि पर चढ़ा देते हैं। आखिर जिस तरह की महत्वाकांक्षा और भारी अपेक्षाएं शिक्षा से जोड़ दी गयीं हैं, वे बच्चों को आत्महत्या की तरफ ही लेकर जाती है।

परीक्षा अनुत्तीर्ण होने के कारण भारत में जिन राज्यों से सबसे ज्यादा आत्महत्याएं हुईं, वे हैं पश्चिम बंगाल (6284), महाराष्ट्र (6102), तमिलनाडु (4717), आंध्रप्रदेश (3306), कर्नाटक (3509)। व्यापकता में अध्ययन करने पर पता चलता है कि वर्ष 2001–2019 की अवधि में विभिन्न कारणों से 139468 विद्यार्थियों ने आत्महत्या की।

टीकमगढ़ जिले के ज्यौरामौरा गांव में फरवरी एक साथ दो छात्राओं ने फांसी लगा कर आत्महत्या कर ली। वे यहां परीक्षाएं देने के लिए किराए के मकान में रहती थीं। वहीं ट्यूशन पढ़ाने वाले एक व्यक्ति ने उन पर शोषण स्वीकार करने के लिए दबाव डाला। ऐसा न करने पर उन्हें बदनाम करने की धमकी दी। इस दबाव में उन्होंने आत्महत्या कर ली।

जरा विचार कीजिये कि ये दोनों छात्राएं अपने साथ हो रहे दुर्व्यवहार के बारे में अपने परिजनों और पुलिस को क्यों नहीं बता पायीं? शायद उन्हें भय लगता था कि समाज उनके साथ खड़ा नहीं होगा और उनके ही चरित्र पर सवाल खड़े करेगा। उनकी सोच सही ही रही, लेकिन परिणति दुखदायी रही। वास्तव में सुरक्षा के नाम पर लड़कियों को कैद में रखे जाने की परंपरा रही है। मर्दवादी समाज में शोषित को ही दोषी करार दिए जाने की व्यवस्था है।

क्या भारत में युवाओं के लिए कोई प्रतिबद्ध नीति और व्यवस्था है? बिलकुल नहीं! इसके उलट हर कोई युवाओं पर अपनी इच्छाओं का गट्ठर रखता जा रहा है। जीवन के हर एक दिन में उनसे चार दिन जीने की उम्मीद की जा रही है। शिक्षा से लेकर कौशल निर्माण तक उन्हें प्रताड़ित ही कर रहा है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि परिवार, समाज और बाजार उनसे जीवन की हर विलासिता को जुटा लाने की उम्मीद करते है, इसके लिए युवाओं को अपना निजी व्यक्तित्व बनाने का अवसर ही नहीं मिलता है। ऐसे में परीक्षा ने अनुत्तीर्ण होने या घरेलू समस्याएं होने या फिर प्रेम में असफल हो जाने पर वे तुरत–फुरत आत्महत्या का कदम उठाते हैं। यह वक्त की जरूरत है कि हम बच्चों को संयम और विचार करना सिखाएं, उन्हें हम आत्महत्या के लिए मजबूर न करें।

विद्यार्थियों ने जिन राज्यों में सबसे ज्यादा आत्महत्याएं की हैं, वे हैं महाराष्ट्र (19725), पश्चिम बंगाल (15333), तमिलनाडु (12150), आंध्रप्रदेश (9451), कर्नाटक (10546)।

भारत में बालक और किशोर मानसिक स्वास्थ्य

भारत में आज बच्चों और किशोरवय समूह के मानसिक स्वास्थ्य पर सघन पहल करने की जरूरत है। इस समूह के मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए भारत में अभी बेहद सीमित प्रयास हो रहे हैं। वर्ष 1937 में पहला बाल मार्गदर्शन क्लीनिक खोला गया था। इसके बाद वर्ष 1940 के आसपास भारतीय मानसिक आरोग्य परिषद की स्थापना हुई। वर्ष 1980 तक भारत में 120 बाल मार्गदर्शन क्लीनिक संचालित हो रहे थे। इसके बाद भारत में बच्चों के स्वास्थ्य–पोषण और व्यापक अधिकारों के लिए नीतिगत पहल होती रही, किन्तु मानसिक स्वास्थ्य की व्यापकता को भारत की सरकारें महसूस ही नहीं कर पायीं। वर्ष 1974 में राष्ट्रीय बाल नीति लाई गयी थी, इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986, श्रम नीति (1987), राष्ट्रीय पोषण नीति (1993), विभिन्न मना. रोगों– आटिज्म, सेरेब्रल पालसी, मानसिक विक्षिप्तता और बहु विकलांगता से प्रभावित लोगों के कल्याण के लिए ट्रस्ट अधिनियम (1999), बच्चों के लिए चार्टर (2005), बच्चों के लिए राष्ट्रीय कार्ययोजना (2005) लागू किये गए, किन्तु इनमें से किसी में भी बच्चों और किशोरवय समूह के मानसिक स्वास्थ्य के लिए कोई भी कार्ययोजना और प्रतिबद्धता मौजूद नहीं थी. राष्ट्रीय स्वस्थ्य नीति (2006 और 2016) और राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति (2014) में बच्चों और किशोरवय समूह पर छोटा–मोटा ध्यान दिया गया। राज्य सरकारों के स्तर पर केरल को छोड़ कर किसी भी राज्य ने कोई नीतिगत व्यवस्था ही नहीं बनाई।

किशोरवय समूह के मानसिक स्वास्थ्य को वर्ष 2014 में लागू हुए राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम में शामिल छह मुख्य रणनीतियों में शामिल किया गया। इसके साथ ही स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम में भी इसे स्थान देने की पहल हुई, लेकिन जमीन और क्रियान्वयन के स्तर पर यह नजर आता है कि बच्चों और किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए जिस तरह की व्यवस्था की जरूरत है, वह मौजूद नहीं है।

भारत में बच्चों और किशोरवय समूह के मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) को सुरक्षित रखने के लिए सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य व्यवस्था और शैक्षणिक संस्थाओं में मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम को लागू करना सबसे प्रभावी तरीका हो सकता है। उल्लेखनीय है कि भारत में लगभग 15.22 लाख स्कूल (कुल दर्ज बच्चे 26.1 करोड़) हैं, जिनमें से 1.34 लाख हाई स्कूल और हायर सेकेंडरी स्कूल हैं। इन उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में 3.95 करोड़ बच्चे दर्ज हैं। इसी तरह 52534 महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में लगभग 21 लाख युवा दर्ज हैं। इन सभी स्कूलों और महाविद्यालयों में शिक्षकों को बाल और किशोर मनोविज्ञान का बुनियादी वैज्ञानिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है ताकि वे मनोरोगों और व्यक्तित्व विकार के लक्षणों को पहचान सकें और परामर्श की सेवाएं प्रदान कर सकें।

छोटी उम्र के नाजुक रिश्ते

लखनऊ। दुनिया प्यार के बगैर नहीं चल सकती, यह सच है, मगर जरूरी नहीं कि यह प्यार सिर्फ पुरुष मित्र या महिला मित्र के रूप में ही मिले। फिल्मों में रिलेशनशिप को लेकर दिखाई जाने वाली एक्सट्रीम कंडीशन को लोग रियलिटी मानने लगे हैं जिसकी वजह से आजकल युवाओं में सबसे ज्यादा ब्रेकअप हो रहे हैं। यहां तक कि कम उम्र के बच्चों में भी मानसिक तनाव का सबसे बड़ा कारण ब्रेकअप बन चुका है। पिछले दिनों केजीएमयू के मानसिक रोग विभाग में ज्यादातर केस ब्रेकअप से जुड़े आए। विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. आदर्श त्रिपाठी ने बताया कि डिप्रेशन और सुसाइडल अटैम्प्ट के केस में ज्यादातर में कारण ब्रेकअप निकला। इनमें ज्यादातर कॉलेज या स्कूल स्टूडेंट्स हैं।

केस 1. पर्सनल लाइफ खत्म कर दी

ग्रेजुएशन प्रथम वर्ष की एक लड़की सीवियर डिप्रेशन में मानसिक रोग विभाग में आई। काउंसिलिंग में पता चला कि लड़की जैसे ही कॉलेज आई तो फाइनल ईयर के एक लड़के ने उसका पीछा किया, उसे प्रपोज किया। आखिरकार लड़की ने उसे हां कर दी। कुछ दिन तक रिलेशनशिप ठीक तरह से चला बाद में लड़के ने उसे टॉर्चर करना शुरू कर दिया। लड़की की पर्सनल लाइफ पूरी तरह से खत्म कर दी। रिलेशनशिप से बाहर निकलने की स्थिति में उसने उसे ब्लैकमेल करना शुरू कर दिया। जिसे लेकर लड़की के परिवार वालों के साथ उसकी काउंसिलिंग की गई।

काउंसिलिंग– केजीएमयू के मानसिक रोग विभाग में ब्रेकअप जैसी समस्याओं को लेकर आने वाले लोगों की उम्र और मैच्योरिटी लेवल पर काउंसिलिंग की जाती है। अगर 14 से 20 साल का युवा है तो उसे करियर और परिवार की तरफ फोकस किया जाता है। वहीं अगर 20 से 30 साल के बीच के लोग हैं तो उन्हें रिलेशनशिप की वैल्यू करना, अपने अंदर क्या बदलाव लाने हैं, आदि बताया जाता है, क्योंकि सुख चाहने से पहले आपको सुख को संभालना आना चाहिए।

केस 3. नासमझी में उठाया कदम

बाराबंकी की रहने वाली 18 वर्षीय लड़की पढ़ाई के लिए लखनऊ शिफ्ट हुई। जहां कॉलेज में एक लड़के के साथ रिलेशनशिप की शुरुआत हुई। लड़के की उम्र भी कम थी। लड़का जरूरत से ज्यादा पजेसिव था। लड़की को किसी भी लड़के से बात न करने देना, फोन बिजी होने पर झगड़ा करना जैसी हरकत करता था। लड़की ने जब इस रिश्ते से बाहर निकलने की सोची तो उसने मर जाने की धमकी दी। जिसके बाद दोनों ने घरवालों के छिपकर शादी कर ली। लड़का आत्मनिर्भर नहीं था जिसके बाद लड़की फिर से अपने परिवार में आ गई। अब लड़की उस लड़के को लेकर डिप्रेशन में आ गई। वो उसे छोड़ना चाह रही है, वहीं बीच–बीच में लड़के को लेकर दुविधा में आ जाती है।

केस 2. मेडिसिन के साथ मैनेजमेंट से मिली राहत

लखनऊ का एक लड़का इंजीनियरिंग का कोर्स करने दिल्ली गया। जहां उसे अपनी क्लास फैलो से प्यार हो गया। एक से दो साल तक सब ठीक से चला। बिना किसी बड़ी वजह के अचानक ही लड़की ने लड़के से बातचीत करना कम कर दी। लड़के ने कई बार वजह जानने की कोशिश की, लेकिन उसके हाथ निराशा लगी। डिप्रेशन में आकर लड़के ने सुसाइड करने की कोशिश की। बाद में उसका इलाज केजीएमयू के मानसिक रोग विभाग में चला।

काउंसिलिंग–डॉ. त्रिपाठी ने बताया कि लड़के ने अपना सारा रुटीन उस लड़की के इर्द–गिर्द बना लिया था। बाद में जब उस लड़की से रिश्ता टूटा तो उसकी लाइफ में खालीपन आ गया था। जिसमें लड़के की दवा के साथ–साथ खुद को वैल्यू देने और मैनेजमेंट करना सिखाया गया। शरीर की बीमारी कई बार मन को भी प्रभावित कर देती है। ऐसे मामलों में मर्ज समझने के लिए मरीज की मनःस्थिति भी समझना जरूरी है, इसलिए राज्य सरकार अब अपने सभी डॉक्टरों को मानसिक स्वास्थ्य में डिप्लोमा कराने जा रही है। इसके लिए दिसंबर, 2020 तक का समय दिया गया है।

बच्चों में डालें न सुनने की आदत

आजकल लोग अपने बच्चों को सारी खुशियां देने में लग जाते हैं। जरूरत है कि हम अपने बच्चों को न सुनने की आदत डालें। उन्हें यह सिखाएं कि जरूरी नहीं है कि आपको लाइफ में सारी चीजें मिल जाएं। जरूरी है कि हम बच्चों को रिश्तों के महत्व को समझाएं। हर चीज को केवल इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति अच्छी नहीं होती है। खुद की वैल्यू करना सिखाएं। हमेशा दूसरे की उम्मीदों पर न चलकर खुद की अपेक्षाओं को भी देखना चाहिए। आत्मसम्मान को भी महत्व देना चाहिए। जरूरी नहीं है कि हर रिश्ता नासमझी पर टिका हो। अक्सर लोग अपने हिसाब से अपनी शर्तों को दूसरे पर थोपने लगते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए, इस तरह से रिश्ते लंबे समय तक नहीं चलते हैं।

(source: Jaagaran.com)

बुजुर्ग: मानसिक स्वास्थ्य और कानूनी अधिकार

दिल्ली पुलिस में अफसर एक बिटिया ने कुछ माह पूर्व सड़क पर अपनी माँ को मरने के लिए छोड़ दिया। महिला आयोग की टीम ने बूढ़ी महिला को हॉस्पिटल में भर्ती कराया। दिल्ली महिला आयोग की टीम जब महिला का हाल जानने अस्पताल पहुंची तो डॉक्टरों ने बताया कि महिला कुपोषण की शिकार है। बूढ़ी महिला के शरीर में पड़े जख्म और उसकी तकलीफ के आधार पर डॉक्टरों का कहना था कि वह ज्यादा दिन की मेहमान नहीं है।

इस बूढ़ी अम्मा की समस्या अधिकांश बेसहारा बुजुर्गों की दास्तान है, जो अपने ही परिवार के हाथों प्रताड़ित किये जाते हैं। आये दिन अखबारों में बुजुर्गों की दर्दनाक दास्तान छपती रहती है जिसमें पढ़ी–लिखी काबिल संतान अपने माता–पिता को सड़क पर छोड़ जाती है। मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' आज भी बुजुर्गों के कई सवालों का हल ढूंढ़ रही है। ममता का कोई मोल नहीं होता लेकिन मोल देकर भी ममता को कोई खरीद नहीं सकता। शायद इसलिए 'बूढ़ी काकी' अपनी सारी संपत्ति देकर भी अपने एकमात्र भतीजे से सम्मान की दो पूड़ी न पा सकीं। न जाने कितनी बूढ़ी काकी आज शारीरिक पीड़ा के साथ–साथ मानवीय संवेदनाओं को झकझोरने वाली मानसिक अवहेलना को सहन कर रही हैं! सफल–सुखद परिवार की बुनियाद रखने वाले बुजुर्ग आज सबसे ज्यादा उपेक्षित हैं जिन्होंने अपने जीवन का अनमोल समय घर–परिवार और रिश्तों को सहेजने में लगा दिया, वे अपने ही घरों से बेघर होने को मजबूर हैं। अपने ही रिश्तों के बही–खाते में गुम होते जा रहे हैं। बुढ़ापे को रिश्तों की कसौटी पर बोझ बनते देखना अक्सर उन्हें मानसिक रूप से बीमार बना देता है। बात–बात में टोका–टाकी आज की आधुनिक पीढ़ी को सहन नहीं है, उम्र और तजुर्बे के बीच रिश्तों की ढीली होती डोर हमारे बुजुर्गों के मानसिक तनाव का कारण बन रही है। जिन्होंने हमें बेहतर जीवन दिया, उनके मानसिक स्वास्थ्य की हम अनदेखी कर रहे हैं जबकि उन्हें समझना और उनकी हिफाजत करना हमारी जिम्मेदारी होनी चाहिए।

डा. नाज परवीन

(सामाजिक समस्याओं और मुद्दों के प्रति निरंतर सक्रिय रहती हैं। 'यंग सोशल साइंटिस्ट्स एसोशिएसन ऑफ इंडिया' की दस वर्षों से सक्रिय सदस्य हैं।)

भारतीय परंपरा में यह सदियों से है कि बड़ों के आशीर्वाद से दिन की शुरुआत की जाए। यह आधुनिक जीवनशैली में परिवर्तित हो रही है। सदियों से घर के हर छोटे–बड़े फैसले में अंतिम मुहर घर के वरिष्ठ सदस्य की लगती रही है। हमारे ग्रामीण परिवेश में बाजार–हाट से लेकर खेत–खलिहान, शादी–ब्याह की जिम्मेदारी को पूरा करते हमारे बुजुर्ग कभी मानसिक तनाव के लिए समय ही नहीं निकाल पाते थे। सामाजिक बंधनों की पकड़ से वो सहज ही बाहर आ पाते थे। परिवार के साथ–साथ पास–पड़ोस की चिंता उन्हें कभी थकने ही नहीं देती थी। जिसका बहुत बड़ा लाभ यह था कि वे मानसिक तनाव व अवसाद (डिप्रेशन) जैसी समस्याओं से जूझते नहीं थे, अपितु वे स्वयं परिवार को तनाव से निकालने वाले सबसे बड़े चिकित्सक बन जाते थे। लेकिन जीवन जीने के तरीकों में हुआ बदलाव हमारे बुजुर्गों के

लिए सबसे ज्यादा भारी पड़ रहा है। परिवार सीमित हो गए हैं, सामाजिक जीवन संकुचित हो गया है, लोगों का मिलना–मिलाना अब पहले जैसा नहीं रहा। जीवन का यह खालीपन हमारे बुजुर्गों पर गहरा प्रभाव डाल रहा है। भारत की ग्रामीण संस्कृति आज भी परंपरा की विरासत सहेजे हुए है लेकिन प्रतिस्पर्धा की दौड़ में हमारे गाँव भी तेजी से बदल रहे हैं। जिससे गाँवों में भी बुजुर्गों का मानसिक स्वास्थ्य खतरे में नजर आने लगा है।

आँकड़ों पर नजर डालें तो भारत में 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की संख्या वर्ष 1951 में लगभग 2 करोड़ थी। जो कि वर्ष 2011 में बढ़कर लगभग 10.4 करोड़ हो गई। यूनेस्को का मानना है कि भारत में वर्ष 2025 तक यह संख्या दोगुनी हो जाएगी। ऐसे में समाज और सरकार की ओर से वरिष्ठ नागरिकों के जीवन की चुनौतियों को आसान बनाने के उपाय किए जाने जरूरी हैं ताकि बुजुर्ग आत्मसम्मान का जीवन जी सकें। वर्तमान में मौजूद वृद्धाश्रमों तथा स्वास्थ्य केन्द्रों में वरिष्ठ नागरिकों के लिए पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं नहीं हैं। मानसिक स्वास्थ्य सुविधाओं की तो और ज्यादा कमी है। अतः सरकार को ऐसी जगहों पर बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए ताकि बुजुर्गों की मानसिक सेहत भी दुरुस्त रहे।

वरिष्ठ नागरिकों के अधिकारों और सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 1999 में राष्ट्रीय वृद्धजन नीति की घोषणा की। इससे उनके अधिकारों को पहचान मिली और उनकी आर्थिक–सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा की जिम्मेदारी सरकार ने ली। तत्पश्चात 'माता पिता, वरिष्ठ नागरिकों की देख–रेख एवं कल्याण अधिनियम, 2007' (मेंटेनेंस एंड वेलफेयर ऑफ पैरेंट्स एंड सीनियर सिटीजन एक्ट, 2007) लागू किया गया। वरिष्ठ नागरिक भी शांतिपूर्ण जीवन जी सकें, इसका इसमें कानूनी प्रावधान किया गया है। लेकिन संस्कारों को पोषित करने वाला यह कानून सामाजिक तौर पर माता–पिता और वरिष्ठ नागरिकों की सुरक्षा पर अब भी कई सवाल खड़े करता है। निश्चित तौर पर इस कानून के तहत बुजुर्गों की देखभाल का प्रावधान है। इसके तहत वृद्ध माता–पिता का परित्याग दंडनीय अपराध माना गया है, लेकिन अफसोस कि आज भी बुजुर्गों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं आ सका है। इसलिए भारत सरकार का प्रयास है कि कानून को और सख्त बनाया जाए ताकि बुजुर्गों के अधिकारों का हनन न हो सके। इसलिए संसद में 'माता–पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण–पोषण और कल्याण (संशोधन) विधेयक, 2019' लाया गया है, जो अभी प्रस्तावित है।

इस बिल में कई नए बदलाव के प्रावधान हैं। यह विधेयक 'बच्चों' की परिभाषा में सौतेले बच्चे, दत्तक (जिन्हें गोद लिया गया है) बच्चे, बहू–दामाद और नाबालिग बच्चों के कानूनी अभिभावक (लीगल गार्जियन) को भी शामिल करता है। विधेयक बच्चों और संबंधियों को ट्रिब्यूनल के फैसलों के खिलाफ अपील करने की अनुमति भी देता है। बिल में सजा के दायरे में भी सुधार का प्रावधान किया जाएगा। वर्तमान में, बुजुर्गों का परित्याग करने के अपराध में तीन माह की कैद और पांच हजार रुपये का जुर्माना किया जा सकता है, जबकि संशोधित विधेयक में छह माह की कैद और दस हजार रुपये का जुर्माना या दोनों का प्रावधान किया गया है। देश में बुजुर्गों को मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ रखने के लिए कठोर कानूनों के साथ–साथ मानवीय मूल्यों पर खरा उतरने वाले समाज की भी आवश्यकता है। तभी बुजुर्गों की शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना को रोका जा सकता है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि वक्त का पहिया अपनी रफ्तार से घूम रहा है। आज जहां हमारे बुजुर्ग हैं, कल वहां हम भी होंगे। इसलिए हमें हमारे बुजुर्गों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का बेहतर ख्याल रखना चाहिए।

मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों वाले 43 प्रतिशत बच्चे साइबर हमला करना अधिक पसंद करते हैं

नए शोध से पता चलता है कि मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों वाले बच्चों के साइबर अपराधी होने की संभावना लगभग दोगुनी है। आंकड़े 14,994 आयु वर्ग के 11 बच्चों के अनुसंधान से आते हैं, जो कि युवा लोगों द्वारा 'द साइबरस्पेस' के साथ हमारे सहयोग के भाग के रूप में हैं।

आँकड़े

- 43 प्रतिशत मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों वाले बच्चों का कहना है कि उनके 22 प्रतिशत साथियों की तुलना में साइबर हमला किया गया है
- 38 प्रतिशत बच्चों की देखभाल में कहा जाता है कि वे हर दिन साइबर हमले करते हैं
- 36 प्रतिशत बच्चों की देखभाल करने वाले लोग कहते हैं कि वे ऑनलाइन परेशान हैं
- लड़कों की तुलना में लड़कियों के साइबर अपराधी होने की संभावना अधिक होती है– 4 लड़कियों में से 1 (25 प्रतिशत) की तुलना में 5 लड़कों में से 1 (18 प्रतिशत)
- उनमें से, जो साइबर ठग थे– 17 प्रतिशत बच्चों ने इसे वास्तव में भयानक बताया, 31 प्रतिशत में यह बुरा और के रूप में वर्णित है, 39 प्रतिशत ने इसे अप्रिय बताया

(source: Internetmatters.org)

चिकित्सक, विशेषज्ञ, सितारे, शख्सियत इन सबकी राय, अनुभव, सीख और जिंदगी को जान–समझ लेने के बाद सबसे अहम है उनकी राय को जानना जो वास्तव में हर रोज एक नई लड़ाई को जीते और उनसे लड़ते हैं, यानी कि आम लोग। यहां हमने आम लोगों की बातों को सुनने और उन्हें कलमबद्ध करने की कोशिश की है।

हत्या की तरह है हर एक खुदकुशी!

खुद की जान लेना बहुत मुश्किल है। पर जब आपका दिमाग ही आपकी मौत का षड्यंत्र रचने लगे तब आप कई बार असहाय महसूस करते हैं, और एक दिन खुद अपनी मौत का फंदा बांध लेते हैं।

हम कई ऐसी चीजें खुद में भरते जाते हैं जिससे ठेस पहुंचती है हमें और एक दिन यह सारी चीजें अवसाद की छवि लेकर उभरती हैं, जो हमारे अस्तित्व से काफी बड़ी दिखने लगती हैं। धीरे–धीरे वह छवि हमारे अंदर की ही चीजों को खाती जाती हैं, हम अंदर ही अंदर खुद के लिए कम होते जाते हैं, हम अंदर ही अंदर खत्म होते जाते हैं, और अवसाद की छवि हमें इतनी जोर से ढकेलती हैं कि हम जिंदगी की छत पर से नीचे गिर जाते हैं और हम दुनिया के लिए भी नहीं बचते। पैसा, शोहरत, कुछ काम नहीं आता क्योंकि आपके अकेलेपन में पैसा नहीं होता आपकी बातें सुनने को, शोहरत की भी जबान नहीं होती। आपके भीतर का अकेलापन आपको भारी भीड़ में भी काटता रहता है। आप हंसते–मुस्कुराते वक्त भी दुःखी होते हैं क्योंकि कई बार आप बस हंसते हैं, खुश नहीं होते। दोस्त–यार भी कई बार काम नहीं आ पाते क्योंकि तब तक हम अवसाद को ही अपना दोस्त समझने लगते हैं। हमारी जिंदगी कालेपन की ऊंची चट्टानों से घिर जाती है, जिनको सूरज की किरणें भी पार नहीं कर पाती, चांदनी रात भी नहीं ही दिखती है और तारों की रोशनी भी फीकी पड़ने लगती है।

धीरे–धीरे हमें उस कालेपन से प्यार हो जाता है, अकेलापन ही अच्छा लगने लगता है और अवसाद से दोस्ती गहरी होने लगती है। हमें कई लोग समझाने की कोशिश करते हैं कि इन सब से बाहर निकलो– आओ, मिलो, बैठो, बातें करो, हँसो– पर हम ऐसा नहीं करते क्योंकि हम समझ ही नहीं पाते हैं कि हमारी संगति बुरी है और यह दोस्ती बुरे रास्तों का दरवाजा खोलेगी। हम कई सारे ऐसे काम करने लगते हैं जिनको हम पहले अपने 'बुरे सपने' में किया करते थे। हम टूटने लगते हैं, बिखरने लगते हैं, बेचैनियों से घिर जाते हैं, पर हम तब पर भी इन सारे विषयों पर किसी से बात नहीं करते क्योंकि हमारे नए दोस्त (अवसाद) ने हमें किसी से बात करने को भी मना किया होता है।

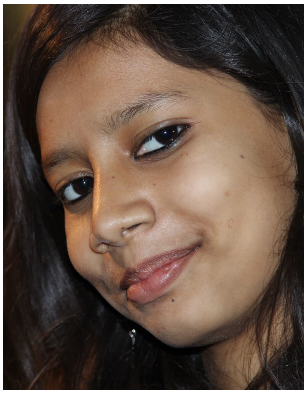

यह सही बात है कि बुराइयों की दीवार काफी ऊंची होती है और चारों ओर सबसे पहले बुराइयां ही दिखती हैं, पर यह भी सच है कि इस ऊंची दीवार के पीछे पतली ही सही पर कोमल सी अच्छाइयों की भी चादर मौजूद है. बुराइयों की दीवार को लांघना बहुत ही मुश्किल है, और उसे लांघने से ज्यादा तोड़ने की कोशिश करनी चाहिए क्योंकि अगर आप लांघ भी जाएं तो वह दीवार आपके भीतर खड़ी ही रहेगी, ढहेगी नहीं जो आगे शायद और ऊंची उठे और आपको घेर ले। लेकिन हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अच्छाइयों की चादर हमारा इंतजार कर रही है, कि हम इन दीवारों को तोड़ कर बाहर आएं और इस चादर से लिपट जाएं। क्योंकि जब बुराइयां किसी की जान ले लेती हैं, तब अच्छाइयों की भी उम्मीद घटती जाती है। आज के समय में सुकून और शांति ढूंढना कठिन तो है, पर वह मौजूद है। खुशियां भी यहीं है, हमारे सामने बैठे हुए, बस अदृश्य हैं। इन्हें तलाशने की जरूरत है, खुद को परखने की जरूरत है. हँसी को नहीं, खुशी को ढूंढने की जरूरत है। कोई आदमी अपने जीवन का दर्द बांटे तो उसे सुनिए। कई बार हम खुद में इसलिए मर रहे होते हैं क्योंकि हमारी कोई सुनने वाला नहीं होता। अपने दोस्तों, परिवारों में बातचीत कीजिये। कोरोना काल का समय तो और भी असहनीय है क्योंकि एक तरफ अवसाद से जूझ रहे आदमी के जीवन का कालापन और अकेला. पन दोनों ही और ज्यादा गहरा हो रहा है, और दूसरी ओर हंसता–खेलता इंसान उदास. ीनता का मरीज होता जा रहा है। और इस समय में हमें सामाजिक रूप से अपनों से जुड़े रहना चाहिए। इसलिए फीजिकल डिस्टेंसिंग रखें सोशल डिस्टेंसिंग नहीं। खुशियों को बटोरिये क्योंकि अवसाद खुशियों से ही डरता है। रात के 3 बजे जब सांस लेना भी मुश्किल लगे तब अपने किसी यार को फोन घुमाइए जो आपकी मनोदशा समझ सके, जो जिन्दगी की खूबसूरती और आपके जीवन की जरूरतें बताए। जैसे भी हो सके, अपना खयाल रखिये क्योंकि कई बार आपको भी नहीं पता होता कि आपके जीवन की बिजली से कितने लोगों के घरों में रौशनी है।

–बहकी बातें (रुनझुन)

रुनझुन राय
लेखिका एवं छात्रा

पहले असफल होना सीखिये!

बच्चों को हर हाल में ये समझना होगा कि परिवार के लिए उनसे ज्यादा जरूरी कुछ नहीं होता! ये नाम, पैसा, शोहरत किसी के साथ नहीं टिकते, कभी नहीं टिकते फिर इनके पीछे इस हद तक क्यों भागना कि एक दिन इनके बिना जीना ही दूभर लगने लगे! यदि आप अपनी समस्या बताएंगे नहीं, तो किसी को पता कैसे चलेगा? घर, परिवार, मित्र में से कोई–न –कोई तो अवश्य ही सुनता है, हमेशा सुनता है। ये मानती हूँ कि बहुधा हमारे पास किसी की समस्या का समाधान नहीं होता लेकिन उससे भी कहीं ज्यादा ये विश्वास रखती हूँ कि कह देने से मनों बोझ हट जाता है दिल से। दुःख की परतें थोड़ी झीनी होने लगती हैं। जीवन उतना कठिन नहीं लगता कि जिया ही न जा सके! ऐसे कैसे आप किसी भी समस्या को जीवन से बड़ा मान लेते हो कि वो न सुलझी तो सब कुछ बेकार है? खत्म हो गया है!

जब आप इस दुनिया में अपनी मर्जी से आए नहीं तो आपको कोई हक नहीं कि जाने का रास्ता स्वयं चुनें। वृक्ष में फूल आते हैं, सूख जाते हैं, फल बनते हैं, खा लिए जाते हैं, तो क्या वृक्ष फलना–फूलना बंद कर दे? वनस्पति तो फिर उगे ही न कभी! प्रकृति में जितनी खूबसूरत चीजें हैं, सदियों से सब अपनी जगह हैं। हम मनुष्यों ने इनका सीना चीर दिया है पर वे तब भी हैं...अडिग! पता है क्यों? क्योंकि इन्हें किसी से कोई अपेक्षा नहीं होती। इन्होंने देना ही सीखा है, इसीलिए निराशा इनके पास फटकने के बहुत पहले उलटे पाँव लौट जाना ही पसंद करती है। आप वृक्ष बनना सीखिए। सपने देखना अच्छी बात है। उसे पूरा करने की कोशिश, उससे भी कहीं अधिक अच्छा। लेकिन जो ये सपने पूरे न हुए तो बिखरना क्यों है? एक कोशिश और नहीं हो सकती क्या? भूलिए मत कि आप भी किसी का सपना हो सकते हैं।

कामयाबी की कहानी उन पुराने लोगों से सुनिए, जिन्होंने अपना घर बनाने में ही पूरा जीवन निकाल दिया। जिन्होंने कभी एसी वाला अपना कमरा या हवाई जहाज की यात्रा का ख्वाब तक नहीं देखा। वो इसलिए क्योंकि उन्हें अपने पैरों और चादर की माप के बारे में मालूम था। उनके लिए आज भी उस वस्तु की अहमियत है जो उन्होंने पाई–पाई जोड़कर खरीदी थी। फिर चाहे वो पुराना रेडियो हो या फ्रिज। आपको भी हर सुविधा की कीमत और अहमियत समझनी होगी। रिश्तों का मूल्य समझना होगा। उन लोगों की भावनाओं की कद्र करनी होगी जो आपसे हृदय से जुड़े हुए हैं। मौत को गले लगाने का निर्णय लेने से पहले एक बार उन्हें गले लगाइए। कुछ भी न महसूस हो तो बात कीजिए उनसे। हद है! ऐसे कैसे सबको छोड़कर यकायक चले जाते हैं लोग।

अरे, जिसका जितना जीवन है वो जीता है. परेशानियाँ, संघर्ष, दुःख किसके साथ नहीं चलते? इन्हीं से जूझते, लड़ते, कभी गिरते, कभी उठते, संभलकर चलने का नाम ही तो है जिंदगी। इसमें घबराने जैसा क्या है? हिम्मत है तो जीकर दिखाइए और नहीं है तो.....! सीखिए जीना! सफलता को मारिये गोली, पहले असफल होना सीखिए। जीने की राह यहीं से निकलती है। चखिए, हारने का स्वाद! पीजिये खून के घूँट! जी करे तो बाल्टी भर रो लीजिए। मन लगाने के लिए संगीत सुनिए, बागवानी कीजिए, पढ़िए–लिखिए। कुछ भी कीजिए, जो आपको कभी पसंद हुआ करता था पर प्लीज मरने का ख्याल भी न लाइए। जीवटता बनाए रखिए।

एक बात जो मैं बीते 3 वर्षों से लगातार लिख रही हूँ, फिर कहती हूँ– इस समय के बच्चों को भी तमाम मानसिक तनावों से होकर गुजरना होता है। उनकी छोटी–सी दुनिया में भी कई परेशानियाँ होती हैं। उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए यह बेहद आवश्यक है कि उम्र के हर दौर में उनके पास ऐसे कुछ नाम जरूर हों जिनके बारे में वो निश्चिन्त होकर सोच सकें कि "हाँ, ये वे लोग हैं जिनसे मैं अपनी कोई भी समस्या कभी भी साझा कर सकता/सकती हूँ। जो किसी भी निर्णय को मुझ पर थोपेंगे नहीं और मेरी बात ध्यान से सुनेंगे, समझेंगे।" यह काम परिवार के सदस्यों से बेहतर और कोई भी नहीं कर सकता क्योंकि यही वे लोग हैं जिनके साथ बच्चा सर्वाधिक समय व्यतीत करता है। अपनी–अपनी महत्वाकांक्षाओं और धन के पीछे भागती दुनिया में यदि कहीं कुछ पीछे छूट रहा है तो वह बचपन ही है। वही बचपन, जो समय की माँग करता है! स्वयं को सुने जाने की गुजारिश करता है। कहते हैं, इंसान के पास जो घर में नहीं होता, वह उसी की खोज में बाहर जुटा रहता है। कितना अच्छा हो कि बच्चों को सबसे पहले यह बतला दिया जाए कि हम उनके 'सपोर्ट सिस्टम' हैं और वे जीवन की किसी भी रेस में जीतें या हारें, हर चिंता को छोड़ अपनी परेशानियों में आँख मूंदकर सीधे हमारे पास चले आयें, बेझिझक अपनी बात कहें! न केवल परिवार अपितु एक सकारात्मक समाज के लिए भी यह विश्वास और जुड़ाव अत्यावश्यक है।

बच्चे ही क्यों, हम सभी को ये प्रश्न अपने–आप से करना चाहिए और इनके उत्तर भी कंठस्थ होने चाहिए कि हमारे जीवन में ऐसे कितने 'अपने' हैं? क्या हम अपने घनिष्ठ मित्रों के संपर्क में हैं? ऐसे कितने नाम हैं, जिन पर भरोसा किया जा सकता है? उनसे अपनी मुश्किल साझा की जा सकती है? कौन हैं वे लोग जो हमारी बात सुनने या समाधान ढूँढने से पहले घड़ी नहीं देखेंगें और न ही समयाभाव का रोना रो अनायास विलुप्त हो जायेंगे? सोचना होगा, जब हर तरफ निराशा हो और आपका मन उदास...तो कौन है, जो खुद बढ़कर आपको थाम लेगा? यदि ऐसा एक भी नाम न निकला तो विचारणीय है कि क्या कमाया? क्या जिया? क्या पाया? लेकिन हार तो तब भी नहीं माननी है।

–प्रीति 'अज्ञात'

मंजरी
स्त्री के मन की

Sulabh International Social Service Organisation
THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED design, pre-press and color offset printing
bansal TUTORIALS
takshila connect to the universe
COMFED PRIDE OF BIHAR Sudha
We Care International School
बिहार राज्य पुल निर्माण निगम लिमिटेड
GYAN GANGA ज्ञानम् भार: क्रियां विना
Limagrain

आप हमें ई–मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई–मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है। प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री का अन्यत्र इस्तेमाल करना कॉपीराइट का उल्लंघन माना जाएगा।

© इक्विटी फाउंडेशन